नरक स्वर्ग के चित्र

—: स्वामी सत्यभक्त :—

—एक रुपया पचास नये पैसे—

प्रकाशक—
लालजी भाई सत्यस्नेही
मंत्री—सत्याश्रम मंडल वर्धा

मूल्य १॥)

मुद्रक—
सदाशिव गोमाशे
व्य. सत्येश्वर प्रिं. प्रेस वर्धा—

नरक और स्वर्ग के चित्र

(घर और पड़ौस में बातबात में पैदा होनेवाले नरकों को स्वर्ग में परिणत करानेवाली; एकांकी नाटकों के समान, अभिनय योग्य; प्रभावक और मनमोहक, अमोघ बोध सामग्री)

-लेखक-

सत्येश्वर के सन्देश वाहक—सत्यसमाज के संस्थापक

--: स्वामी सत्यभक्त :--

प्रकाशक—मंत्री-सत्याश्रम वर्धा

मुद्रक—व्य. सत्येश्वर प्रिन्टिंग प्रेस वर्धा

मई १९५९ ई. बुधी ११९५९ इतिहास संवत

डेढ़ रुपया —मूल्य— तीन शिलिंग

प्रस्तावना

कौटुम्बिक जीवनमें लोग जितने पास पास रहते हैं उतने ही पास पास वहां नरक और स्वर्ग भी रहते हैं। कलाहीनता, अविवेक और असंयम से अच्छे से अच्छे सम्पन्न घरों में भी नरक बनसकता है। और जीवनकला, विवेक और संयम से गरीब और विपन्न घरों में भी स्वर्ग का निर्माण होसकता है। इन चित्रों के पढ़ने से सरलता से पता लग सकता है कि एक ही परिस्थिति में किस प्रकार शीघ्रता से नरक का निर्माण होता है और किसप्रकार शीघ्रता से स्वर्ग का निर्माण होता है।

संगम में ये चित्र धीरे धीरे तीन वर्ष से कुछ अधिक समय तक निकलते रहे हैं। कुछ चित्र संगम में नहीं निकल-पाये। इन चित्रों से बहुत लोग प्रभावित हुए। संगम का प्रायः हर एक पाठक नरक स्वर्ग के चित्र की बाट देखा करता था। बहुतों ने मुझे लिखा कि इन चित्रों के पढ़ने से हमारे घर का कायाकल्प होगया है; सचमुच नरक का स्वर्ग बनगया है। कई बार एकांकी नाटक के रूप में ये मंच पर खेले गये। और दर्शकों पर इनका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। बहुत से पत्रोंने इन चित्रों को उद्धृत भी किया। कुछ पत्रों में इनका अनुवाद भी छपा। इस प्रकार इन चित्रों से बहुत से कुटुम्बों ने लाभ उठाया है। बहुत दिनों से यह मांग बहुत लोगों की तरफ़ से आरही थी कि ये चित्र एक साथ पुस्तकाकार छापे जायँ जिससे घर घर में एक साथ पढ़े जासकें और हर एक कुटुम्ब नरक से निकल कर स्वर्ग में प्रवेश करे।

विवाह के समय हर एक वर वधू को अधिक से अधिक उपयोगी यदि कोई वस्तु भेंट देने योग्य है तो यह पुस्तक है। इस पुस्तकके पढ़ने से कौटुम्बिक जीवन को सुखशान्तिमय बनानेमें बहुत मदद मिलेगी।

जिस दृष्टिकोण से ये चित्र लिखे गये हैं वह दृष्टिकोण एक ही है। जैसा कि मैंने एक गीत में व्यक्त किया है—

"मैं मैं तू तू दूर हटायें, तू मैं मैं तू गायें"

जहां मैं मैं हूँ, तू तू है, इस प्रकार भेदभाव जोर पर है वहां नरक

है। जहां मैं तू है, और तू मैं हूँ इस प्रकार का अभेदभाव जोर पर है वहां स्वर्ग है। सारे चित्र इसी दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। फिर भी पुनरुक्ति नहीं मालूम होती। किन्तु भिन्न भिन्न परिस्थितियों में तथा भिन्न भिन्न सम्बन्धों में भेदभाव और अभेदभाव का चित्र जैसा बनता है उससे : चित्रों में एक तरह की नवीनता मालूम होती है, उपयोगिता मालूम होती है।

यह एक अनोखे ढंग का कथा साहित्य है, जो सच्चा धर्मशास्त्र भी कहा जासकता है। क्योंकि यह कर्तव्याकर्तव्य का ठीक पथप्रदर्शन करता है। धर्मशास्त्र के नामपर अहिंसा सत्य ईमान आदि के सामान्य गीतों का कोई अर्थ नहीं। ये तो धर्मशास्त्र की वर्णमाला है। वर्णमाला जरूरी होनेपर भी वह शिशुवर्गीय पाठ्यक्रम ही है। जैसे शिशुवर्गीय पाठ्यक्रम से कोई शिक्षित नहीं कहा जासकता उसी प्रकार अहिंसा आदि के गीतों से कोई धर्मज्ञ नहीं कहा जासकता। जरूरत है उन्हें जीवन में उतारते समय आनेवाली उलझनों को सुलझाने की। साथ ही यह भी समझना चाहिये कि धर्म का क्षेत्र मन्दिर मसजिद आदि नहीं है किन्तु बाजार और घर है। बाजार में तथा समाज में भी मनुष्य अपने अधार्मिक जीवन को छुपा लेता है। उसके धर्म की ठीक परख होती है घर में, व्यक्तिगत जीवन के क्षेत्र में। और उसी से उसका जीवन वास्तवमें सुखी या दुःखी बनता है। जो व्यक्तिगत जीवनमें धर्मात्मा है उसे सामाजिक जीवनमें धर्मात्मा बनते देर नहीं लगती। इस प्रकार ये नरक स्वर्ग के चित्र धर्म के वास्तविक रूप को जीवन के महत्वपूर्ण भागों में प्रगट करते हैं। मुझे आशा है कि इनको पढ़ने से घर के आधे से अधिक दुःख दूर होजायँगे और सुख दूने होजायँगे। इस दृष्टि से यह पुस्तक प्रत्येक घर में पहुंचना चाहिये और कुटुम्ब के हर व्यक्ति को, पति पत्नी को, तथा सभी स्त्री पुरुषों को बार बार पढ़ना चाहिये।

९ अंका ११९५९ — सत्यभक्त

२-४-५६ — सत्याश्रम वर्धा

विषय सूची

—पेशगी खरीद

निम्न लिखित सज्जनों ने इस पुस्तक की कुछ प्रतियाँ पेशगी खरीदीं है—

२५) श्री चुन्नीलाल जी कोटेचा बार्शी
स्व. पत्नी (सौ. धोंडुबाई के स्मरणार्थ वितरण के लिये।

२५ पुस्तकें सागरमल जी सत्यसमाजी बेरसिया (भोपाल)



—स्वामी सत्यभक्त—



—सौ. वीणादेवी सत्यभक्त—

नरक स्वर्ग के चित्र

१- दहेज

नरक

वर का पिता— इतना सा दहेज देकर आप मेरा अपमान कर रहे हैं। बारात में बहुतसे बड़े बड़े आदमी आये हुए हैं उनके सामने आप मेरी नाक काट रहे हैं।

कन्या का पिता— इसमें आपका अपमान क्या है? इससे तो सिर्फ मेरी गरीबी साबित होती है। मेरी गरीबी से मेरा अपमान होगा, आपका अपमान क्यों होगा?

वर का पिता— क्यों न होगा? मैंने अपने लड़के की शादी एक भुक्कड़ कंगाल भिखारी से की है यह क्या मेरा कम अपमान है?

कन्या का पिता— जबान सम्हालकर बोलिये। भुक्कड़ कंगाल हूँ तो अपने घर का हूँ। आपके घर भीख मांगने आऊं तो न दीजियेगा। अभी तो भुक्कड़ कंगाल आप ही दिखाई देरहे हैं जो भीख मांगने मेरे द्वार पर खड़े हैं।

वर का पिता— (क्रोध से ओंठ चबाते हुए) हम भिखारी हैं? सौ बार नाक रगड़ने पर हम यहां आये हैं। नहीं चाहिये मुझे ऐसे भुक्कड़ की लड़की।

कन्या का पिता— तो चले जाओ ! ऐसे भिखारी के घर में हमें भी लड़की नहीं देना। मैंने भले घर में लड़की की शादी करने के लिये बुलाया था, अपना घर लुटाने के लिये और भिखारियों के घर में लड़की का जीवन बर्बाद करने के लिये नहीं।

वर का पिता— लड़की के साथ लड़कीका हिस्सा न दोगे ?

कन्या का पिता— लड़की को पाल पोसकर इतना बड़ा कर दिया, और जिन्दगी भर दूसरों की सेवा के लिये सौंप दिया, अब हिस्सा किस बात का ?

वर का पिता— तो लड़की को बेंच क्यों न दिया ?

कन्या का पिता— मैं आपके समान नीच नहीं हूं कि सन्तान के दाम वसूल करता फिरूं ?

वर का पिता— (चिल्लाकर) मैं नीच हूँ ? अच्छा देखूंगा अब तुम्हारी लड़की के साथ कौन शादी करता है। (वर से) चल रे चल ! ऐसे असभ्य भुक्कड़ के यहां शादी नहीं करना है।(इसके बाद वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष को गालियाँ देने लगे। कन्या पक्ष वाले वर पक्ष को गालियाँ देने लगे। कोई वर को खींचने लगे, कोई वर को पकड़ने लगे। नरक का तांडव होने लगा।)

स्वर्ग

वर का पिता— यह क्या करते हैं आप ? आपने लड़की का पालन पोषण करके हमारा घर बसादिया, यही कृपा क्या कम है आपकी, फिर इस दहेज की क्या जरूरत है ?

कन्या का पिता— दहेज मैं कहां देरहा हूं ? यह तो सन्मान के लिये पत्रं पुष्पं है।

वर का पिता— आपने खिलाने पिलाने ठहराने आदि की व्यवस्था की, यही सन्मान क्या कम है ? सच पूछा जाय तो आप

पर इतना बोझ डालना भी अन्याय है। दूसरों का घर बसाने के लिये आपने जो पन्द्रह वर्ष तक कन्या का पालन पोषण किया यह निस्वार्थ परोपकार ही इतना महान है कि आप स्वयं पूज्य हैं। आप पर खिलाने पिलाने का बोझ डालना भी अन्याय है। फिर अगर कुछ भेंट लूंगा तो मुझे पाप में ही डूबना पड़ेगा ?

कन्या का पिता— इसमें पाप की क्या बात है ? पांच सात आदमियों की ही तो आप बारात लाये हैं उनके ठहरने खाने पिलाने का खर्च ही कितना ? लोग तो सौ सौ आदमियों की बारात लाते हैं।

वर का पिता— लोग उपकारी पर अत्याचार करके नरक में जाते हैं तो मैं क्यों जाऊं ? बारातमें दूल्हा सहित पांच व्यक्तियों से अधिक होना ही न चाहिये। दो आदमी ज्यादा आगये इसी का मुझे खेद है। अब मैं किसी तरह की भेंट या दहेज न लूंगा।

कन्या का पिता— पिता के धन में यदि लड़कों का हक है तो थोड़ा बहुत लड़की का भी है। लड़की धनहीन क्यों रहे ?

वर का पिता— यह ठीक है। लड़की को धनहीन कदापि न रहना चाहिये। पर इसकी जिम्मेदारी कन्या के पिता पर नहीं, वर के पिता पर है। जिस घर में स्त्री कर्तव्य करती है उसी घर में उसका अधिकार है और पूरा अधिकार है और स्वतन्त्र अधिकार है। सो जो आभूषण मैं लाया हूँ उसपर कन्या का पूरा अधिकार है। इसकेसिवाय स्त्रीधन पत्रिका में जो भरा जाता है उसपर उसका पूरा अधिकार है। इसके सिवाय घर खर्च से बचने पर आमदनी में से भी थोड़ा बहुत हिस्सा उसे मिलता ही रहेगा, उस- पर उसका पूरा अधिकार होगा। लड़के को जैसा मिलता है वैसा लड़की को भी मिलना चाहिये पर मिलना चाहिये वरपक्ष से।

कन्या का पिता— आपकी पंडिताई के आगे तो मेरी बोलती ही बन्द है। पर बारातियों को रुपया नारियल से टीका

तो करने दीजिये। उनने इतना समय दिया, यात्रा का कष्ट उठाया; उसका बदला तो कैसे चुकाया जासकता है पर सन्मान के लिये रुपया नारियल देना जरूरी है।

वर का पिता— जरूरी है तो वह मेरे लिये है, आपके लिये नहीं। बारात में जो लोग आये हैं उनका ऊपकार मुझपर है आपपर नहीं। आपके यहां जो मेहमान आयें उनका उपकार आपपर है, और मेरे यहां जो मेहमान आये उनका उपकार मुझपर है। उन्हें भेंट देना होगी तो मैं देदूंगा। अथवा काम पड़नेपर उनके यहां जाकर प्रत्युपकार कर दूंगा? यों पहिले मैं उनके यहां जाकर ऐसा उपकार कर भी चुका हूँ। इस प्रकार के परस्पर सहयोग का मिहनताना नहीं चुकाया जासकता।

कन्या का पिता— तर्क में आपको जीतना मुझे क्या वृहस्पति को भी कठिन है। पर मेरे चाहे अन्ध संस्कार कहिये, मुझे ऐसा लगता है कि सन्मान की निशानी के रूप में वर को तथा अन्य बारातियों को कुछ न कुछ देना चाहिये।

वर का पिता— ठीक है, तो आप अपना वृद्धहठ पूरा कर लीजिये। बारातियों को रुपया तो न दीजिये क्योंकि रुपया मापतौल की चीज है, एक एक नारियल या कोई भी फल देदीजिये। वर जब आपको प्रणाम करे तब आप वात्सल्य प्रदर्शन के लिये कोई कपड़ा पुस्तक आदि चीज देसकते हैं। हां! वह बहुमूल्य न होना चाहिये। आपके उपकारों के बोझ से हम यों ही दबे हुए हैं, और अधिक बोझ उठाने की हिम्मत हममें नहीं है।

इसप्रकार दहेज और भेंटें ठुकराई जारही थीं और स्वर्ग का नृत्य होरहा था।

१ चन्नी ११९५५ इ. सं. उदयरात्रि ३ बजे

२– प्रेम विवाह

नरक

पत्नी– प्रेम विवाह क्यों किया झख मराई। सारी दुनिया ही उलटगई।

पति– किसकी दुनिया उलटगई? तुम्हारी या मेरी?

पत्नी– तुम्हारी क्या उलटगई? कुटुम्ब छूटा मेरा; बन्धन में पड़ी मैं; पोजीशन गिरा मेरा। शादी के बाद तो तुम्हारी आंखें ही बदलगईं, रुख ही बदलगया।

पति- क्या आंखें बदलीं?

पत्नी- क्या नहीं बदला? विवाह के पहिले तुम मेरा जितना आदर करते थे, जितना प्रेम बताते थे, उसका शतांश भी है अब? छोटे छोटे कामों के लिये हुक्म चलाना और आंखें दिखाना सीख गये हो। पहिले मेरे इशारे पर नाचा करते थे, अब मुझे ही इशारे पर नचाना चाहते हो?

पति— तो क्या करूं? जिन्दगीभर तुम्हारे इशारे पर नाचा करूं?

पत्नी–- जो काम जिन्दगीभर नहीं कर सकते थे उसका ढोंग चार दिन के लिये क्यों किया था? झूठे ढोंग में मुझे क्यों फसाया था?

पति— झूठा ढोंग मेरा ही था? क्या तुम्हारा नहीं था? कहां गया वह आदर सत्कार? कहां गया वह सेवाभाव? कहां गई वह मुसकराहट? कहां गया वह कटाक्ष? सब तो खत्म होगया। अब तो मैं कमाकर लाने को और बोझा ढोने को एक बैल रहगया हूँ।

पत्नी— बैल तो इतने ही अर्थ में हो कि सांढ़ की तरह गरजते हो, और किसी की कोई पर्वाह नहीं करते। बाकी पद पद पर तुम्हारे व्यवहार से ऐसा घमंड और लापर्वाही टपकती है जो एक लौंड़ी की तरफ भी नहीं दिखाई जाती। अब जीवन में मुस-कराहट रह ही कहां गई है जो दिखाई दे। मेरा जीवन तो तुमने धीरे धीरे बिलकुल झुलसा ही दिया है।

पति— ऐसी क्या आग लगादी मैंने जिससे तुम्हारा जीवन झुलसगया ?

पत्नी— क्या नहीं लगादी ? इस विवाह से मेरे घरवाले सब नाराज होगये। मेरी इस असहायता का तुम और तुम्हारे घर-वाले खूब दुरुपयोग करते हैं। मेरा गौरव नष्ट करते हैं। आज मैं एक एक पैसे को मुँहताज हूं, चिन्दी चिन्दी को तरसती हूँ। जानवरों की तरह रूखा सूखा खाती हूँ। और सब से बुरी बात तो यह है कि शील के बारे में तुम ईमानदार भी नहीं हो।

पति- अच्छा तो मैं बेवफा भी हूं और जानवर भी हूँ, अब तुम्हें क्या करना है ?

पत्नी- जानवर तो मैं बनचुकी हूं अब बेवफा भी बनना पड़ेगा।

पति -क्या तलाक दोगी ?

पत्नी- वह तो भाग्य में बदा ही है पर उसके पहिले न जाने कितना नरक भोगना पड़ेगा।

पति- तुम मेरी जिन्दगी बर्बाद करोगी ?

पत्नी- जब तुम मेरी जिन्दगी में आग लगा सके, तब क्या उस आग का थोड़ा भी सेंक तुम्हें न लगेगा ? तुमने मेरा पीहर उजाड़ दिया और इस घर में आग लगादी। अब जलने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। सो जलूंगी खूब जलूंगी, इतना जलूंगी कि उसकी लपटों में जलानेवाले भी जल जायँ।

(यह कहती हुई; अपने बाल नोंचती हुई कमरे के बाहर चली जाती है। पति सिर पीटता हुआ जमीनपर धप से गिर पड़ता है।)

स्वर्ग

पत्नी- (पति को चिन्ता में बैठा हुआ देखकर) किस विचार में बैठे हो राजा !

पति- कुछ नहीं, यों ही तुम्हारे बारे में कुछ विचार मन में आगये ?

पत्नी- क्या विचार ?

पति- यही कि तुम्हें मेरे लिए कितना त्याग करना पड़ा ! तुम्हारे मातापिता आदि छूट गये । मेरी आर्थिक अवस्था ठीक न होने से विवाह के समय ठीक से गहने कपड़े तक न लेसका । स्त्रीधन की कोई व्यवस्था तक न कर सका ।

पत्नी- पर तुम्हीं तो मेरे स्त्रीधन हो, मुझे और स्त्रीधन की क्या जरूरत है ?

पति- सो तो हूं ही, पर जैसी गरीबी में जैसा श्रमिक जीवन तुम्हें विताना पड़ता है, और विवाह के पहिले जैसा वैभव-मय जीवन तुम्हारा था उसे विचारकर मुझे बड़ा खेद होता है । ऐसा लगता है कि मेरे द्वारा यह प्यार का अत्याचार होगया है ।

पत्नी- प्यार तो अत्याचार करता ही है पर वह अत्याचार होता है मीठा । क्योंकि आनन्द तो प्यार में ही रहता है बाहिरी वैभव के विलास में नहीं । जिसे तुम श्रमिकता कहते हो वह तो प्यार के कारण आनन्द का खेल बनगई है ।

पति- आनन्द का खेल ?

पत्नी- हां ! आनन्द का खेल । जब मैं बर्तन मलती हूँ और मेरे मना करने पर भी तुम बर्तन मलने में मदद करने बैठ जाते हो, किसी भी काम में जब तुम जल्दी साथीदार बनजाते हो; तब काम का कष्ट भूल जाता है और सहयोग का मजा मिलने लगता है । ऐसी हालतमें काम श्रम कैसे रह जायगा; वह तो खेल बनजायगा !

पति- और तुम भी तो मेरे काममें मदद करने लगती हो ।

पत्नी- पर तुम्हारे ऊपर दया करके नहीं,सहयोग का मजा लूटने के लिये। जिन्दगी में जिन्हें खेल कहते हैं वे आखिर हैं क्या? सहयोग का मजा लूटने के लिये किये गये श्रम ही तो हैं। लोग निरर्थक सहयोग को खेल कहते हैं हम सार्थक सहयोग को खेल समझते हैं, उससे सहयोग का खेलपन थोड़े ही चला जाता है; सिर्फ साधारण खेलों की अपेक्षा उसका दर्जा ही बढ़जाता है, क्योंकि उसकी उपयोगिता बढ़जाती है।

पति- तुम तो बड़ी दार्शनिक बनगई रानी!

पत्नी- जब तुम मेरी छाया पड़ने से मजदूर बनगये तब क्या तुम्हारी छाया पड़ने से मैं दार्शनिक न बन जाऊंगी?

पति- तुम्हारी छाया पड़ने से मैं मजदूर क्यों बनूंगा। तुमतो रसमय हो इसलिये रसिक बनूंगा।

पत्नी- रसिक तुम बनोगे क्या, तुम तो जन्मजात रसिक हो ही। लोग रसिकता में कामिनी का शृंगार करने लगते हैं पर तुम पत्नी के काम में हाथ बटाकर सब कामों को रसमय बना-देते हो।

पति- फिर भी अनुभव करता हूँ कि तुम्हारी क्षतिपूर्ति नहीं कर पारहा हूँ। इस विवाह से तुम्हारे पीहर का सम्बन्ध टूट गया इसका मुझे बड़ा खेद है। एक तरह से तुम कुटुम्बहीन होगई हो।

पत्नी- यह तो समाज का विधान ही है कि लड़की का कुटुम्ब छूटता ही है। इसमें कुटुम्बहीनता का सवाल क्या है? पत्नी के लिये सारी कौटुम्बिकताओं का निचोड़ तो पति है।

पति- और पति के लिये सारी कौटुम्बिकताओं का निचोड़ पत्नी है।

पत्नी- यह भी ठीक कहा तुमने, ऐसी हालतमें अपने लिये कुटुम्ब-हीनता का सवाल है ही नहीं। हां! माता पिता की नाराजी है, पर वह क्षणिक है और स्नेह का परिणाम है।

पति- क्या तुम्हें आशा है कि उनकी नाराजी चली

जायगी ?

पत्नी- अपने आप तो न जायगी, परन्तु जब अपना सफल सुखमय जीवन वे देखेंगे; तब उनकी नाराजी का कारण दूर होजायगा। उनकी नाराजी का कारण यह भ्रम है कि मैंने उनकी इच्छा न मानकर अपना जीवन बर्बाद कर लिया है। बड़े परिश्रम से पालीपोसी गई सन्तान की बर्बादी की कल्पना से उनका नाराज होना स्वाभाविक है। इसके मूलमें उनका सन्तान-स्नेह ही है। पर जब वे अपना सुखी संसार देखेंगे; और इस सफल जीवन को लेकर जब मैं उनकी सेवा में उपस्थित होकर उनके चरणों पर अपना मस्तक रगड़ दूंगी तब उनकी सारी नाराजी पूछ जायगी।

पति- बहुत सुन्दर योजना है रानी तुम्हारी। अब तो हमें यह कोशिश करना है कि अपना जीवन जल्दी से जल्दी सफल हो।

पत्नी- जीवन तो सफल है ही, सिर्फ उन्हें दिखाने का ही काम बाकी है।

पति- पर अपने पास दिखाने लायक क्या है? अपनी वैभवहीन अवस्था का तो तुम्हें पता है ही।

पत्नी ने मीठी घृणा के साथ मुसकराते हुए कहा—हुंः! वैभव क्या दिखाने की चीज है? अपने पास है अनन्त प्रेम, अटूट विश्वास और अखंड सहयोग। यह वैभव-शालियों को भी दुर्लभ है और देवताओं को भी दुर्लभ है।

१२ बुधी ११९५८ इ. स. ता. ४-५-५८

३- देरी

नरक

दूर से पति को आया देखकर पत्नी आकर पलंग पर लेट गई और दीवार की तरफ मुँह कर लिया। पति आया और पत्नी को लेटी देखकर कहा—

पति - क्या होगया रानी साहबा को ? कमरे में हिलने डुलने में ही इतनी थकावट आगई कि दिन में पलंग पकड़ना पड़ा ?

पत्नी- रानी साहबा को जब तक मौत न आयगी तब तक होनेवाला क्या है ? बेकार इतनी जल्दी आये ! दोस्तों में और भी गपशप लड़ाते और आधी रात को आते। घर बांदी है ही, जो मशीन की तरह घर को पेटी में बन्द रहकर दिनरात काम करती रहती है। उसे घूमने फिरने या मनबहलाव की क्या जरूरत है ? मशीन में जान थोड़े ही होती है।

पति- तो मेरी जान खालो, आजायगी मशीन में जान। दिनभर रोटियों के लिये आफिस में बैल की तरह जुतो; अफसरों के घर की बेगार भी करो और जब हारे थके घर लौटो तो सहानुभूति की दो मीठी बातें सुनना तो दूर, यहां भी मातम मनाने बैठ जाओ ! इधर रानी जी दिनभर तो सहेलियों के साथ हँसी के फव्वारे उड़ाती रहेंगी और मुझे आते देखा तो मातम छाजायगा। फूटे करम !

पत्नी— फूटे करम हमारे ! दिनभर गूंगे रहकर बैल की तरह जुतना कहलाता है हँसी के फव्वारे उड़ाना, और घड़ीभर के लिये जेलखाने से बाहर निकलने की इच्छा करना कहलाता है मातम मनाना, अब करम फूटे नहीं है तो क्या हैं ?

पति— हुं ! घर में रहना जेल में रहना है। तो मैं जेलर हूँ और तुम कैदी हो। तो जेल छोड़कर जाने को कौन मना करता

है ? जाओ न जहां जी चाहे। फिर न रहेंगे फूटे करम।

पत्नी— बस ! इसी तरह जले पर नमक छिड़कना जानते हो। आंसू पोंछना तो दूर, आंखों में मिर्चे झोंकते हो। न जाने इस कपाल में क्या लिखा लाई थी, (सिर पीट लेती है) कि न अकेले में चैन, न दुकेले में चैन।

पति— (अपना सिर पीटकर) तुम अपना सिर क्या फोड़ती हो; फूटने लायक है सिर मेरा। जिसमें लिखा है कि दिन-भर जानवर की तरह जुतूं और शाम को घर आऊं तो नरक में आऊं।

(भनभनाता हुआ दूसरे कमरे में चला जाता है)

स्वर्ग

दूर से पति को आया देखकर पत्नी द्वार पर आगई। चेहरे पर चिन्ता की छाया के साथ कुछ मुसकराहट थी। पति के आते ही पत्नी ने पति के हाथ का बेग लेलिया। और सहानुभूति से बोली—आज तो तुम्हें काफी जुतना पड़ा।

पति— नहीं, आफिस में तो देर नहीं हुई। परन्तु पता लगा कि मैनेजर साहब का लड़का बीमार है इसलिये सहानुभूति के लिये उनके घर चला गया था।

पत्नी— अच्छा किया दुःख में तो शामिल होना ही चाहिये। अब लड़के की कैसी तबियत है ?

पति— ठीक है ! एक हफ्ते में बिलकुल ठीक होजायगा। वहीं जरा देर होगई। मुझे मालूम था नहीं, इसलिये तुमसे कह न सका कि आज देर होजायगी। तुम्हें काफी चिन्ता होती होगी इसी चिन्ता से मैं बेचैन था।

पत्नी— जब तक घर में नहीं लौट आते तब तक यों ही काफी चिन्ता रहती है। परन्तु जिस दिन देर होजाती है उसदिन

हृदय धुक धुक करने लगता है।

पति— अपनी चीज की बड़ी सम्हाल करती हो रानी।

पत्नी— चीज कहने से चिन्ता का ठीक माप नहीं होसकता। जो चीज प्राणों से भी ज्यादा कीमती है उसकी चिन्ता कितनी होती होगी. उसका अनुभव हो या न हो, पर अन्दाज तो लग ही सकता है।

पति— अन्दाज तो है ही, पर अनुभव भी होता है। जब तुम्हें पीहर जाना पड़ा था तब अनुभव भी हुआ था। इसीलिये तो तुम्हारी चिन्ता के खयाल से मेरी बेचैनी बढ़जाती है। और जहां तक बनता है देर से आने की भूल नहीं करता। पर आज अकस्मात ही देरी का कारण आगया। अरे! ये नये कपड़े अलमारी के बाहर कैसे रक्खे हैं? कहीं चलने की तैयारी है क्या?

पत्नी- नहीं तो।

पति- नहीं नहीं, मुझसे बात न छिपाओ।

पत्नी- कोई खास बात नहीं है। पहिले सोचा था कि तुम आओगे तो तुम्हें चाय पिलाकर थोड़ा आराम कर लेने पर बाग में घूमने चलेंगे।

पति- तो अभी क्या बिगड़ गया? आने में थोड़ी देर जरूर हुई है पर अभी भी घूमने लायक काफी समय है।

पत्नी— पर आज तुम थके हुए हो। मैनेजर साहब के घर चक्कर भी लगाना पड़ा। और लौटते समय तुमने तांगा भी न किया।

पति- तांगा ढूंढ़ने और ठहराने में जितना समय लगता उतने में तो घर ही आगया। समय की कुछ बचत तो थी नहीं, फिर तांगा करके क्या करता?

पत्नी- हुँ! तुम्हें अकेले में जल्दी तांगा मिलता ही नहीं,

जब मैं साथ रहती हूँ तब जरूर मिलजाता है ! क्या मजे की बात बनाते हो ?

पति ने मुसकराकर कहा— यह तो अपना अपना भाग्य है ! तुम्हारे इस चांद से ललाट में कलंक तो नहीं है पर तांगा मिलने की लिखावट जरूर गुदी हुई है ।

पत्नी- चलो, रहने दो । जल्दी तांगा न मिला था तो जरा देर ही होती । पैरों को आराम तो मिलता । थकावट तो न होती ।

पति- मेरे पैरों को थकावट नहीं होती रानी, थकावट होती है सिर को, आंखों को और उंगलियों को । पैर तो बैठे बैठे यों ही अकड़ से जाते हैं इसलिये अधिक से अधिक चलने को जी चाहता है ।

पत्नी- तो मैं तेल लाती हूँ । जरा सिर का मालिश कर देती हूँ ।

पति- उसकी जरूरत नहीं है रानी, बीच बीच में तुम्हारी याद करता रहता हूँ, इससे सिर की थकावट दूर होजाती है ! घर आकर तुम्हें देखते ही आंखों की थकावट दूर होजाती है, और घूमते समय जब तुम मेरी उंगलिया पकड़ लेती हो तब उंगलियों की थकावट दूर होजाती है । और तुम्हारे साथ घूमने से पैरों की अकड़ निकल जाती है ।

पत्नी- तुम महाकवि कब से बनगये ?

पति- मुझे महाकवि बनने की जरूरत नहीं है । जिन्हें मन की प्यास कल्पना से बुझाना पड़ती हो वे बने कवि या महा-कवि । मैं तो अनुभव की बात कहता हूं । वह यदि कविता है तो सैकड़ों कवि उसपर न्यौछावर हैं । क्योंकि मनभर कल्पना से तोले भर वास्तविकता का मूल्य अधिक है ।

पत्नी- अब तुम दार्शनिक भी बनगये, पर तुम्हें दार्शनिक

न कहूँगी। कवि हो, पर कवि भी न कहूँगी। तुम मेरे देवता हो। कवि और दार्शनिक से बढ़कर, बहुत बढ़कर।

पति-- यह ठीक है। जब देवी को पागया हूं तब देवता हूँ ही। पर अब देर न लगाना चाहिये। देवदेवी को विहार को निकल पड़ना चाहिये। लाओ, मैं तुम्हें नई साड़ी पहिना दूँ।

पत्नी-- क्या मैं गुड़िया हूँ जो अपनी साड़ी भी नहीं पहिन सकती ?

पति-- गुड़िया होने का सवाल नहीं है, गुड़िया सजाने का मजा लूटने का सवाल है।

पत्नी—तो गुड्डा गुड्डी की शादी भी खेलना पड़ेगी।

पति—हमारी तुम्हारी तो हर दिन शादी है और हर दिन सुहागरात है।

दोनों की हँसी की गूंज से कमरा खिल उठा; मानों देवताओं ने फूल बरसादिये हों।

९ मम्मेशी ११९५५

४-तुलना

नरक

पत्नी- दिनभर किताब ही पढ़ते रहोगे, क्या कोई दूसरा काम धन्धा नहीं है ?

पति- दिनरात बैल से भी ज्यादा जुते रहने के सिवाय जिन्दगी में और है ही क्या ? घड़ीभर को किताब लेली तो तुम्हारी आंखों में वह भी खटक गई।

पत्नी- किताब पढ़ने को कौन मना करता है ? जरा

बच्चों को सम्हालने का काम आया तो उसी समय किताब लेकर बैठगये ? आखिर ऐसी क्या कमाई देरही है किताब ?

पति- कमाई क्या देगी ? वह तो यह बतारही है कि मैं कितना अभागा हूँ ।

पत्नी—तुम्हारी जीवनी कब से छपने लगी इन किताबोंमें ?

पति— मेरी क्या जीवनी छपेगी ? पर जिनकी जीवनी छपी है उन्हें देखकर ही यह पता लगजाता है कि मैं कितना अभागा हूँ ?

पत्नी- किसने लूटलिया तुम्हारा भाग्य; जिससे तुम अभागे होगये ? और जीवनी छपनेवालों के किस भाग्य से तुम्हें ईर्ष्या होने लगी ?

पति—उनका भाग्य है उनकी सती सुशील नम्र पत्नी के के कारण । सीता जी ने राम जी के पीछे महल छोड़दिये, जंगल में भटकीं, सम्राट रावण के वैभव को ठुकराया; और दिनरात राम-नाम जपा, इतने पर भी जब राम जी ने उन्हें त्याग दिया तब भी उनने चूं नहीं की । इस दृष्टि से जब मैं अपने को देखता हूं तो बिलकुल अभागा पाता हूं ।

पत्नी--और मैं भी अपने को अभागिनी पाती हूं । दुनिया की खुशी के लिये और मर्यादा के पालन के लिये राम जी ने सीता जी के साथ जो भी व्यवहार किया हो पर हृदय के सिंहा-सन पर सदा बिठाये रक्खा । यहां तक कि जब यज्ञ में पत्नी की जरूरत मालूम हुई, तो भी उनने दूसरी पत्नी नहीं की, और सीता जी की सोने की मूर्ति बनवाकर उसे ही विराजमान किया । राम जी के कारण सीता जीका नाम अमर होगया । आजभी दुनिया सीता-राम सीताराम का जाप करती है । पहिले सीताजी का नामलेती है । पर तुम्हारे कारण मुझे कौन पूछनेवाला है ? मेरा नाम कौन लेने-वाला है ? बल्कि मेरे न होनेपर तुम क्या करोगे इसकी याद से

ही ठंडी होजाती हूं। तुम कितने ही बड़े अभागी क्यों न रहो पर मैं तुमसे अधिक अभागिनी हूं यह बात साफ है। क्या करूं? परमात्मा मौत नहीं भेजता इसलिये जीना पड़ता है; सो जिन्दगी ढोरही हूं।

यह कहकर पत्नी मुँह फुलाकर दूसरे कमरे में चली गई पति ने किताब सिर से मोरली। नरक दोनों का दम घोंटने लगा।

स्वर्ग

बच्चे का रोना सुनकर पति ने किताब रखदी और कहा- लाओ! थोड़ी देर को बच्चा मुझे देदो!

पत्नी ने कहा— थोड़ी देर में चुप होजायगा। तुम अपना पढ़ना क्यों बन्द करते हो?

पति- पढ़ना तो काम की प्रेरणा के लिये है दिमाग पर बोझ बनाने के लिये नहीं। काम से ही पढ़ने की सफलता है।

पत्नी— पर अभी बच्चा सम्हालने के काम की जरूरत नहीं है, वह तो मैं सम्हाल लूंगी। तुम तो निश्चिन्तता से पढ़ो फिर सुनादेना कि क्या पढ़ा? मुझे उतना ज्ञानलाभ होजायगा वही बड़ा काम होगा। पर सुनाना वही जो मेरे समझने लायक हो।

पति—तुम्हारी समझ कुछ कम नहीं है, न पुरुषों को समझदारी का ठेका मिला है। फिर मैं कोई दर्शनशास्त्र नहीं; एक महान दार्शनिक सुकरात की जीवनी पढ़ रहा था। पढ़ते पढ़ते मेरी आंखों में आंसू आगये?

पत्नी- शोक के कि हर्ष के?

पति- शोक के भी और हर्ष के भी।

पत्नी- अब तुमने पहेली खड़ी कर दी। जहां शोक वहां हर्ष क्या? और जहां हर्ष वहां शोक क्या?

पति— एक ही बात एक अपेक्षा से शोक पैदा करती है दूसरी अपेक्षा से हर्ष। सुकरात सरीखे महान दार्शनिक, जिनका नाम आज सवा दो हजार वर्ष बाद भी बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है, उनकी कदर उनके जमाने के लोगों ने तो न की सो न की, पर उनकी पत्नी ने भी नहीं की। सुकरात को उसने जीवन भर न समझा और सदा सताती रही। एक बार वे कहीं बाहर से आये तो वह खूब चिल्लाई, फिर भी सुकरात शान्त रहे। तब उसने गुस्से में भरकर ठंड के दिन होने पर भी बर्फ के समान ठंडा पानी उनके सिरपर डाल दिया। तब सुकरात ने सिर्फ इतना कहा कि पहिले बादल गरजे, फिर बरसे। यह पढ़ते पढ़ते मेरी आंखों में आंसू आगये। कैसा महान व्यक्ति! और कैसी पत्नी! पर दूसरी तरफ इसी बात से हर्ष हुआ कि सुकरात के सामने मैं कुछ भी नहीं हूं फिर भी मुझे कैसी सुशील प्रेमल सेवाभावी पत्नी मिली है। जो भाग्य बड़े बड़े महापुरुषों को न मिला वह मुझे मिला। इसके कारण हर्ष के भी आंसू आगये। अब तुम समझगई होगी कि शोक और हर्ष दोनों एक साथ कैसे रहे?

पत्नी- समझगई। पर मेरे पल्ले तो हर्ष ही हर्ष पड़ा है। सुकरात सरीखी घटनाएँ तो अपवाद हैं। पर बड़े से बड़े महापुरुष से लगाकर मामूली मजदूर किसान तक किसी ने नारी के साथ न्याय नहीं किया। अपनी कामुकता के कारण नारी को खिलौने की तरह सजाया जरूर, पर मनुष्योचित गौरव उसे नहीं दिया, न उसकी सुविधाओं का खयाल किया। राम जी ने जनता के साथ न्याय किया पर पत्नी के साथ नहीं किया। कृष्ण जी के लिये तो पत्नियाँ बच्चों को खेलने के लिये नये नये खिलौनों के समान थीं, महावीर बुद्ध तो आत्मोद्धार के लिये अपनी पत्नियों को अपने जीते जी विधवा बनाकर चलदिये, और साधारण जनों की नीति तो यही है कि—

ढोल गवाँर शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

पत्नियों की ऐसी दुर्दशा के बीच जब मैं अपने को देखती हूँ तब हर्ष के मारे नाचने लगती हूं। देखती हूं तुम कैसे भी महत्वपूर्ण कार्य में लगे होओ मेरी जरा सी आवाज सुनते ही तुरन्त काम छोड़कर चले आते हो, और छोटे से छोटे काम में हाथ बटाने लगते हो। मोक्षार्थियों ने जब मन में आया नारी को नरक की खानि कहकर धुतकार दिया और विश्वासघात करके छोड़दिया पर तुम नारी के प्रति अपनी जिम्मेदारी के आगे मोक्ष को भी हल्का समझते हो। नारी का गौरव, उसकी सेवा का मूल्य तुम जितना लगाते हो और उसका ध्यान रखते हो वह मेरा इतना बड़ा सौभाग्य है कि उसका हर्ष मेरे हृदय में समाता नहीं है।

पति- यह तो मेरा आवश्यक कर्तव्य है; अहसान नहीं। संसार में तो एक से एक बढ़कर सौभाग्यशालिनियाँ पड़ी हुई हैं उनकी श्रेणी में पहुँचाने के लिये तो मैं तुम्हारे लिये कुछ कर ही न सका।

पत्नी- और संसार में एक से एक बढ़कर सौभाग्यशाली पड़े हुए हैं उनकी श्रेणी में पहुंचाने के लिये मैं भी कुछ कर न सकी। पर दुनिया के बड़े सौभाग्यशालियों की तुलना करके हम क्यों रोयें? मैं जिस लायक हूँ मेरा सौभाग्य उससे बढ़कर है इसी खुशी से मैं फूली नहीं समाती हूँ?

पति— यह तुमने अपने लिये कितना ठीक कहा सो तुम जानो, पर मेरे लिये तो बिलकुल सच कहा। सचमुच मैं अपनी योग्यता से अधिक सौभाग्यशाली हूँ।

पत्नी— बड़े बड़े सौभाग्यशाली वास्तव में कितने सौभाग्यशाली थे, इसका पता हमें नहीं लगसकता। क्योंकि जीवन चरित्रों में चमकदार बातें ही लिखी जाती हैं। उनसे वास्तविक सौभाग्य का पता नहीं लगता। वास्तविक सौभाग्य जिन बातों पर अवलम्बित है उनका पता दुनिया को लग ही नहीं पाता। इसलिये

उनकी तुलना करके हमें दुःखी होने की जरूरत नहीं है।

पति— यह ठीक कहा तुमने। हमें अपनी योग्यता और सौभाग्य देखना चाहिये। सो मैं कह सकता हूँ कि मैं देवी को पागया हूँ इसलिये देवता हूं।

पत्नी— और मैं देवता को पाकर देवी हूं।

पति— अब स्वर्ग की जरूरत न रही।

पत्नी— स्वर्ग निगोड़े को पूछता कौन है? हमारा घर ही स्वर्ग है?

१६ बुधी ११९५६ ७-५-५६

५- नमक

नरक

पति- अब क्या खायें? तुम्हारा सिर?

पत्नी- थाली में इतना अन्न तो पड़ा है फिर भी क्या मेरा सिर खाये बिना भूख न बुझेगी।

पति- यह अन्न है? नमक ही नमक तो भरा पड़ा है इसमें, अन्न का स्वाद भी आता है?

पत्नी- नमक ही नमक! तो दोबार पड़गया होगा नमक। खैर; दाल अलग करदो, शाक के साथ ही रोटी खालो! या पन्द्रह मिनिट ठहरो मैं दाल फिर बनाये देती हूँ।

पति- हुं! पन्द्रह मिनिट ठहरो, फिर देर से पहुँचने पर आफिस में गिड़गिड़ाओ और फटकारें खाओ। क्या दुर्भाग्य है! रूखा-सूखा खाना भी नसीब नहीं।

पत्नी- एक दिन भूल से दो बार नमक पड़गया तो क्या होगया ? कुछ हरदिन तो पड़ता नहीं। इतने में ही दुर्भाग्य आगया ?

पति- तो दुर्भाग्य क्या मरने पर ही आयगा ? आखिर दो बार नमक पड़ कैसे गया ? क्या नशे में थीं ?

पत्नी- नशे का ठेका तो मर्दों ने ही लिया है। स्त्रियाँ नशा नहीं करती ? यह नशा नहीं तो क्या है कि किसी दिन नमक ज्यादा होगया तो सिर ही खाने लगगये।

पति—पर दो बार नमक पड़ क्यों गया ?

पत्नी—जब दस काम करती हूँ तो कभी एकाध बात भूल भी जाती हूँ। क्या तुम नहीं भूलते ?

पति— मैं क्या दो बार नमक डालता हूँ ?

पत्नी—तुम्हें थोड़े ही चूल्हे में झुकना पड़ता है जो दो बार नमक डालोगे। पर आज नमक नहीं, तो कल घी नहीं, इस तरह भूलें तो करते ही रहते हो, पर तब मैं कुछ नहीं कहती। एक न एक चीज का रोना तो हर दिन रहता ही है पर करूं क्या, आंसू पीकर रहजाना पड़ता है। कोई चीज न हो तो मैं काम चला ही लेती हूँ तुम भी तब चुपचाप खाजाते हो, पर आज दाल में नमक ज्यादा हो गया तो दाल बिना नहीं चलता। कैसा फूटा भाग्य है मेरा।

पति—ये भाग्य ही तो फूटे हैं कि कभी चीज नहीं मिलती और जब मिलती है तब दुहरा नमक डालकर उसे गाय की सानी बनाकर बर्बाद कर दिया जाता है। मानों खानेवाले गाय भैंस हों।

पत्नी-- तो तुम्हें गाय भैंस बनने को कौन कहता है ? मैं ही गायभैंस बनकर दाल खाजाऊंगी। कसम है आज जो मैं तुम्हारी

रोटी खाऊं ?

पति— न तुम खाओ, न मैं खाऊं। इस फूटे भाग्य में चैन से खाना बदा कहां है ?

यह कहकर पति ने थाली पटक दी। पत्नी ने भी दाल का बर्तन पटक दिया। पति भूखे ही आफिस चलागया। पत्नी भूखे ही खाट पर पड़ी रही। दोनों के दिलोंमें ऐसी आग जलने लगी जिसके आगे नरक की आग भी ठंडी मालूम होगी।

स्वर्ग

दाल में अधिक नमक मालूम होते ही पति ने पत्नी से पूछा—थोड़ा गरम पानी है ?

पत्नी ने कहा- है, यह लो। किसलिये चाहिये ? यह कहते हुए पत्नी ने एक गिलास में गरम पानी देदिया। पति ने थोड़ा पानी दाल में डाल लिया।

पत्नी ने पूछा- यह क्या किया ?

पति ने मुसकराते हुए कहा—आज रोटी बनाते समय तुम मेरे ही ध्यान में लीन रहीं, इसलिये भूल से दो बार नमक पड़गया मालूम होता है ?

पत्नी- एं ! दो बार नमक ? सचमुच मुझे खयाल ही न रहा। पर तुम दाल छोड़ दो, मैं पांच मिनिट में बेसन तैयार कर देती हूँ। पानी डालकर तुमने यह क्या किया ?

पति - पानी मिलाने से दाल का खारापन कम मालूम होगा ?

पत्नी- पर पेट में नमक तो दूना चला जायगा, जो नुकसान करेगा ?

पति कैसे चला जायगा ? मैं अभी दाल आधी ही

लूंगा। तब दूने का आधा बराबर ही तो होगा।

पत्नी—हारी बाबा तुम्हारे हिसाब के मारे। पर मिलाना ही था तो पानी क्यों मिलाया ? घी मिलाते।

पति- पर जितना पानी पच सकता है क्या उतना घी भी पच सकता है ?

पत्नी—पर घी पानी बराबर नहीं डालना पड़ता। दो तीन चम्मच ही काफी होते हैं।

यह कहकर पत्नी ने दाल में दो तीन चम्मच घी डाल दिया।

पत्नी ने कहा— यह क्या किया ? अब तो दाल इतनी फीकी होजायगी कि शायद ऊपर से नमक लेना पड़े।

पत्नी- न होजायगी ! होजायगी तो कुछ दाल और मिला दूंगी।

पति—पर तब तो पेट में नमक ज्यादा होजायगा उसे बेअसर करने के लिये कुछ घी और डालना पड़ेगा।

पत्नी—तो और घी डाल दूँगी।

पति—अच्छी बात है। अब मैं भगवान से प्रार्थना करूंगा कि हे भगवान् ! मेरी रानी को रोटी बनाते समय हर दिन भुला दिया करो, जिससे दो बार नमक पड़जाया करे और मुझे खूब घी खाने को मिला करे।

यह कहकर पति ने अट्टहास्य किया। पत्नी हँसी दबाकर मुसकराई। जिससे दिल में नाचनेवाला स्वर्ग बाहर न निकल पड़े।

२३ धामा ११९५६　　　　　११-६-५६

—❀—❀—

६- सिरदर्द

नरक

धूप निकल आनेपर भी जब पत्नी बिस्तर से न उठी तब पतिने तीखी आवाज में कहा— क्या आज दिनभर पड़ी ही रहोगी ? रोटी कब बनेगी और मैं कामपर कब जाऊंगा ?

पत्नी ने भी रुखाई से उत्तर दिया— मैं क्या बताऊं ? आज रातभर मुझे नींद नहीं आई, हरारत रही और सिर तो फटा जारहा है। तुमने तो एक बार भी खबर नहीं ली।

पति- मैं तुम्हारी खबर लेकर नींद हराम करता तो दिनमें कामपर कैसे जाता।

पत्नी- अच्छा किया, मेरी खबर लेनेवाला भगवान के सिवाय दुनिया में है कौन ? पर वह भी नहीं सुनता। कहती हूँ एक बार पूरी तरह खबर लेले जिससे इन जिन्दगी से पिंड छूट-जाय, फिर किसी की नींद हराम न हो।

पति- तो यह बड़बड़ ही चलती रहेगी, रोटी न बनेगी ?

पत्नी- आज तो मुझसे कुछ नहीं होसकता। न मुझे बनाना है, न खाना है।

पति— पर मुझे तो खाना है।

पत्नी- खाना है तो बनालो और खालो।

पति— हां ! मैं रोटी भी बनाऊं और कमाने भी जाऊं, और तुम पड़ी पड़ी आराम करो।

पत्नी ने जरा चिल्लाकर कहा- मैं कब कब आराम करती हूँ ? मेरे प्राण निकल रहे हैं और तुम्हें आराम दिखाई देता है। मरने को भी तो एक दिन की छुट्टी नहीं। तुम्हें तो महीने में चार

दिन इतवार की छुट्टी चाहिये। २५-३० त्यौहारों की छुट्टी चाहिये, बीमारी की छुट्टी चाहिये, पर मुझे सिर्फ तभी छुट्टी मिलेगी जब मरजाऊंगी।

पति ने कड़क कर कहा— तुम्हें बारह माह छुट्टी ही तो है। घर में बैठी रहती हो। बाहर जाओ तब मालूम पड़े।

पत्नी- सुबह से रात तक काम में जुती रहती हूँ फिर भी यह घर में बैठे रहना कहलाता है। स्त्री की जिन्दगी ही पाप है।

पति- बड़बड़ाया— यह पाप ही तो कहलाया जिससे मुफ्तमें पड़े पड़े खाने मिलता है। और मुझे घर बाहर जुतना पड़ता है।

यह कहकर पति रसोईघरमें गया, थाली लोटे गिलास उठाकर पटकने लगा।

पत्नी चिल्लाकर- घरमें आग ही लगादो; मुझे भी जिन्दा जलाडालो।

इसप्रकार मुँह बजने लगे, बर्तन ठनकने लगे, नरक का तांडव होने लगा।

स्वर्ग

धूप निकल आनेपरभी जब पत्नी बिस्तरसे न उठी तब पतिको पत्नी की तबियत ज्यादा खराब होने की चिन्ता हुई। समझलिया कि रातभर तबियत खराब रही है, अब सबेरे पहर जरा नींद आगई है। सोचा जगाकर तबियत पूछना भी ठीक नहीं; जब नींद खुलेगी तब पूछ लूंगा।

पति रसोई घर में गया। उसने दूध गरम करने के लिये स्टोव नहीं जलाया क्योंकि उसकी आवाज से पत्नी की नींद खुलने की आशंका थी। सिगड़ी जलाकर दूध रखदिया और रसोई

बनाने की तैयारी करली। दूध गरम होजाने पर दाल के लिये पानी भी रखदिया। इतने में पत्नी के जागने की आहट मिली। पति पलंग के पास गया और प्रेमल स्वर में पूछा—कैसी तबियत है रानी !

पत्नी ने शरमाते हुए कहा—ठीक है। पर अभी अभी न जाने कैसी नींद लगगई। रात में कुछ हरारत-सी थी, सिर में भी दर्द था इसलिये अच्छी तरह नींद न आई। अभी अभी थोड़ीसी नींद लगगई।

पति- लगगई तो अच्छा हुआ। दूध गरम तो हो ही गया है पीकर जरा और सोजाओ, नींद से तबियत कुछ हलकी होजायगी।

पत्नी- क्या तुमने दूध भी गरम कर लिया ? मुझे जगाया क्यों नहीं ? नींद भी न जाने कितनी गहरी लगी कि स्टोव की आवाज भी न आई।

पति- स्टोव की आवाज आती कहां से ? मैंने आवाज के डर से स्टोव जलाया ही नहीं, सिगड़ी पर ही दूध गरम किया। अब दाल का पानी रख दिया है।

पत्नी- ओह ! न जाने तुम कैसे हो ? मुझे जगा तो लेते। दिनभर तो पड़ा था मुझे सोने के लिये।

पति- तो क्या तुम चाहती हो कि बीमारी को लम्बे समय के लिये मेहमान बना लिया जाय ?

पत्नी- पर तुम जरासे सिरदर्द के लिये इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? मैं धीरे-धीरे रोटी बनादेती हूँ। काम पर जाने के समय तक सब होजायगा।

पति— पर आज मुझे कामपर जाना नहीं है। आज छुट्टी निकालनेवाला हूँ। तुम्हें रोटी बनाने की कोई जरूरत नहीं है। मैं रोटी बनालूंगा।

पत्नी- बनाली तुमने रोटी ? रोटी के नामपर भारत के

नक्शे बनेंगे, और वे भी अधकच्चे।

पति- वे भारत के नक्शे बनें या इंग्लेंड के, मुँह में जानेपर सब एक से होजाते हैं। रही अधकच्चेपन की बात, सो एक दिन में कुछ नहीं बिगड़ता, आखिर पेट में भी तो आग है।

पत्नी- तो क्या चूल्हे की आग का काम पेट की आग से लोगे? नहीं, यह सब नहीं होने का। मैं जब तक उठ सकती हूँ तब तक तुम्हें रोटी न बनाने दूंगी।

पति— पर मैं बीमार के हाथ की रसोई नहीं खाता।

पत्नी—सब खाते हो। जब मैं कभी बीमार के हाथ की कमाई खालेती हूँ तब तुम बीमार के हाथ की रोटी भी खासकते हो! सिरदर्द कोई प्लेग नहीं है कि छूत लग जायगी।

पति— तुम बहुत हठीली हो।

पत्नी—तुम भी बहुत हठीले हो।

पति- तो एक काम करो। आधे आधे हठ की दोनों आहुति दे दें। आटा मैं गूनता हूं, रोटी तुम बेल दो जिससे भारत का नक्शा न बनें, तुम्हारे मुखमण्डल सरीखा पूरा चांद बनें। रोटी मैं सेकूंगा, तुम बताती जाना। चुपड़ना तुम, खाऊंगा मैं।

पत्नी ने मुसकराते हुए कहा— चलो! तुम बड़े वैसे हो।

अन्त में दोनों ने मिलकर रोटी बनाई। पत्नी मन में कह रही थी, मेरे देवता को मेरी जरा-सी वेदना सहन नहीं होती, छोटे-छोटे काम के लिये आगे आजाते हैं। पति मन ही मन कह रहा था- मेरी रानी बीमारीमें भी मुझे काम नहीं करने देती। दोनों हृदयों में स्वर्ग नृत्य कर रहा था।

५ चिंगा ११९५५ इ. सं. ९-११-५५

७- परिचर्या

नरक

पति—मैं सिरदर्द के मारे कब से छटपटा रहा हूँ पर तुम इतनी निर्दय और नीच हो कि पांच मिनिट को भी सिर को हाथ नहीं लगाया। जरा दबा दिया होता तो चैन पड़ी होती।

पत्नी- नीच तो हूँ ही, तभी तो सुबह से लेकर राततक रोटी बनाना, बर्तन मलना, कपड़े धोना, पानी भरना, झाड़ना बुहारना, बीनना छानना आदि कामों में नाच की तरह लगी रहती हूँ। हाथ ही क्या, सारा शरीर थककर चूर होजाता है। रात में किसी तरह मुर्दें की तरह गिरपाती हूँ तो सिर दबाओ पैर दबाओ, की फरमाइशें शुरु होजाती हैं। नारी का जन्म ही पाप है।

पति- काम तो बहुत थोड़े गिनाये तुमने। कुछ और गिना देतीं-रोटी खाना; पानी पीना, पान चबाना, शरबत पीना; टट्टी जाना, पेशाब करना, दिन में सोना, रात में सोना; निन्दा करना, बकझक करना, भनभनाना, ठनकना, सब काम ही काम तो हैं, सबके साथ क्रियापद लगे हुए हैं।

पत्नी- हां! लगे हुए हैं; पर जब तक मरना क्रियापद न लगेगा तब तक किसी कार्य की क्या गिनती! बहुत चाहती हूँ कि भगवान मौत देदे पर न जाने पहिले जनम में कितने पाप किये थे कि भगवान इस नरक से निकालता ही नहीं।

पति- कैसे निकालेगा? भगवान तुम्हें लेजायगा तो इस घरको नरक बनायगा कौन? मुझ पापीको नरक-यातना देगा कौन?

पत्नी— कहलो! कुसूर तुम्हारा नहीं; इस ललाट का है जिसमें नरक भोगना भी बदा है और नरक की दूती कहलाना भी बदा है।

(यह कहकर पत्नी अपना सिर पीटने लगी)

पति- तुम बेकार अपना सिर पीट रही हो; पीटना

चाहिये इस सिर को, जो सबेरे से ही बेकार दर्द करने बैठगया।

(यह कहते कहते पति भी सिर पीटने लगा)

(नरक साकार हो उठा)

स्वर्ग

पति— यह क्या करती हो रानी, दबाने से सिरदर्द न जायगा।

पत्नी— तो बाम लगादूं ?

पति— वह भी बेकार है। बात यह है कि सिर दर्द कोई बीमारी नहीं है, वह तो सिर्फ बीमारी का सिगनल है। बीमारी तो पेट में रहती है। और सिरदर्द के द्वारा अपने आने की चेतावनी दिया करती है।

पत्नी— तो चेतावनी मिलगई। पेट का विकार हटाने की कोशिश करेंगे। तब तक सिरदर्द की वेदना क्यों सही जाय ? दबाने से या बाम लगाने से कुछ न कुछ आराम होता ही है।

पति— तो बाम की शीशी देदो। मैं ललाटपर चुपड़ लेता हूं।

पत्नी— चुपड़ने से कुछ न होगा। मैं बाम लगाकर ललाट को अच्छी तरह उंगलियों से मसल दूँगी।

पति- तुम सब कर दोगी। आखिर अपने शरीर को थोड़ा बहुत आराम दोगी या नहीं। सबेरे से शाम तक मशीन की तरह काम करती हो। मशीन तो रुकती भी है पर तुम्हें उतना भी विश्राम नहीं मिलता। और अब चाहती हो सिर मसलना। शरीर से इतना वैर न करो। उसे अच्छी तरह सम्हालकर रक्खो जिससे लम्बे समय तक मेरे काम आता रहे।

पत्नी- इसकी तुम चिन्ता न करो! शरीर को मैं खूब सम्हालकर रखती हूँ। स्त्रियाँ बहुत ताकत का काम करने से तो घबराती हैं पर अल्पश्रम का काम काफी अधिक समय तक कर

सकती हैं। धीरे धीरे सबेरे से शाम तक काम करने में भी नहीं थकतीं।

पति- बातें न बनाओ रानी ! तुम अपने शरीर पर अपना ही अधिकार न समझो ! मेरा भी अधिकार है, इसलिये मेरी इच्छा के अनुसार उसे सम्हालकर रखना होगा।

पत्नी- सो तो रखती ही हूं। पर तुम भी न भूलो देव, कि तुम्हारा शरीर सिर्फ तुम्हारा नहीं है मेरा भी है। इसलिये मनचाहे ढंग से उसे बीमारी का भोग न करने दूँगी। उसे आराम पहुंचाने के लिये जो करना होगा करूंगी। इस बारे में तुम्हारा हठ न चलेगा।

पति- प्रसिद्ध तो नारी-हठ ही है नर-हठ नहीं। इसलिये हठ में तो हार मानना ही पड़ेगी।

पत्नी- तो बस ! हार मानकर चुपचाप पड़े रहो। मैं जरा बाम लगाकर सिर मसलदेती हूं।

पति अनुभव कर रहा था कि इस हार पर हजारों जीतें न्यौछावर हैं।

पत्नी अनुभव कर रही थी कि मेरे देवता को मेरे शरीर का अपने शरीर से भी अधिक खयाल है।

दोनों प्रेम के स्वर्ग में विचर रहे थे।

८ मुंका ११९५६ ता. १६--९--५६

८- स्त्रीधन

नरक

पति- मुझे तुम्हारी दोनों चूड़ियों की जरूरत है उतार तो दो !

पत्नी— क्यों उतार दूं ? स्त्रीधन के नामपर सिर्फ दो तोले की चूड़ियों के सिवाय और है ही क्या ? अब इन्हीं पर डांका डालने की तुम्हारी नियत होगई ?

पति- पूंजी के बिना धंधा बैठ रहा है ऐसी हालत में क्या तुम्हें चूड़ियाँ मटकाना शोभा देता है ? धन्धा चलेगा तो ऐसी दस चूड़ियाँ बन जायँगी ?

पत्नी- बनगईं दस चूड़ियाँ ! जब से इस घर में आई हूं एक भी तो चूड़ी बनी नहीं। विवाह की निशानी सिर्फ ये ही तो हैं। सो इन्हें भी लूट लेना चाहते हो ? स्त्रीधन पर नियत डुलाते तुम्हें शर्म नहीं आती ?

पति—मैं अकेला ही तो ये चूड़ियाँ खा न जाऊंगा, तुम्हारा भी तो पेट भरूंगा ?

पत्नी— पेट भरोगे तो कौनसा अहसान करोगे ? दो नौकरानियां न कर सकें इतनी तो मजदूरी करती हूँ; उसके बदले में रोटियां पागईं तो बड़ा अहसान होगया ? अगर इतनी मज- दूरी दूसरों के यहां करती तो इससे अच्छा खाया होता और गहनों कपड़ों से लदी होती।

पति- और वेश्या बनजाती तो सारे शहर की मालकिन होजातीं।

पत्नी- तुम यही तो चाहते हो कि मैं वेश्या बनजाऊं और हराम की कमाई तुम्हें खिलाने लगूं ? ऐसी बातें बकते तुम्हें शर्म नहीं आती ? अपनी कमाई से मेरा पेट नहीं भर सकते थे तो शादी किसलिये की थी ? मेरी जिन्दगी बरबाद करने के लिये ही मर्द का अवतार लिया था ? पर कुछ मर्दानगी तो बताते ? दो पेट के लिये अन्न नहीं जुड़ता, अब चले हैं पत्नी पर डांका डालने और उसे वेश्या बनाने !

पति—जो संकट में पति का साथ न दे वह वेश्या नहीं तो और क्या है ?

पत्नी— मैं वेश्या हूं ? दिनरात नौकरी बजाकर भी भर- पेट रोटी न पानेवाली वेश्या है ? जिन्दगी भर गुलाम की तरह काम करके भी जिसने हाथपर दो पैसे नहीं देखे वह वेश्या है ?

क्या मैं इसीलिये वेश्या हूँ कि और ज्यादा डकैती कराने को तैयार नहीं हूं ? और मेरा खून तक निचोड़ लेनेवाले तुम सज्जन हो ? आग लगे ऐसी जिन्दगी में (सिर पीटने लगती है) और आग लगे ऐसे घर में (बर्तन फेंकने लगती है)

पति- और आग लगे ऐसे पति में (सिर पीटने लगता है) ।

(नरक साकार होजाता है)

स्वर्ग।

पति—रानी; मेरे पाकिट में ये दो चूड़ियाँ किसलिये रखदी हैं ?

पत्नी- बेंचने के लिये रक्खी हैं, मैं कहना भूलगई थी, इन्हें बेंच डालना है ।

पति - पर ये तो विवाह की निशानी हैं इन्हें कैसे बेंचा जासकता है ?

पत्नी-विवाह की जो सच्ची निशानी है उसे न तो कोई बेंच सकता है और न किसी में खरीदने की ताकत हो सकती है । पर मिट्टी पत्थर या धातुओं के टुकड़े विवाह की सच्ची निशानी नहीं होते । विवाह की निशानी हैं मेरे देवता, जिन्हें न बेंचा जासकता है न जिन्हें कोई खरीद सकता है ?

पति- (हँसकर) अच्छा कवियित्रीजी, मैं आपकी असली निशानी की बात नहीं कहता, पर ये नकली निशानियाँ भी क्यों बेंची जारही हैं ?

पत्नी- धंधे के लिये पूंजी की कमी हो तब क्या ये चूड़ियाँ मटकाना अच्छा मालूम होता है ?

पति— पूंजी का कुछ न कुछ उपाय मैं करूंगा उसके लिये स्त्रीधन पर डांका नहीं डाला जासकता ।

पत्नी— स्त्रीधन और पुरुषधनका भेद करके आप विवाह

के समय स्थापित की गई एकता को तोड़रहे हैं।

पति—पर हर हालतमें स्त्रीधन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की रक्षा कर रहा हूँ।

पत्नी-पर स्त्रीधनपर तो मेरा अधिकार है। उसकी व्यवस्था मैं जिस तरह चाहती हूँ उस तरह करने में आप क्यों बाधा डालना चाहते हैं ?

पति—तुम्हारी इच्छा के अनुसर व्यवस्था कर सकता हूं पर उसे ले नहीं सकता।

पत्नी— तो मैं चाहती हूं कि ये बेंच दी जायँ और इनकी रकम व्याज पर लगादी जाय जिससे कुछ आमदनी हो। बेंक में जमा करने से व्याज कम मिलेगा इसलिये मैं आपको ही उधार देदेना चाहती हूँ, इससे व्याज कुछ अधिक मिल जायगा।

पति— पर आपसमें साहुकारी करना पाप है इसलिये मैं इसकी अनुमति नहीं देसकता।

पत्नी— आपसमें साहुकारी करना क्यों पाप है ? जिस-पर अपना असीम विश्वास हो, जहां रकम डूबने की चिन्ता तक न हो, न इसका कोई दर्द हो, वहां साहुकारी करना पाप है ? और अपरिचित या अल्पपरिचित और कम विश्वसनीय व्यक्तिपर साहु-कारी करना पुण्य है ! यह तो बड़ा विचित्र न्याय है आपका !

पति— यह विचित्र न्याय नहीं, मनोवैज्ञानिक सत्य है। अपने आदमी से उधार लेनेपर चुकाने की चिन्ता नहीं रहती ! न चुकानेपर न कचहरी का डर, न बदनामी का डर, इसलिये रकम डूब ही जाती है और मनुष्य को पाप में सनना पड़ता है। एक तो उधार लेना ही पाप है फिर यदि लिया ही जाय तो आपसमें कभी न लेना चाहिये।

पत्नी- पर यहां आपस का सवाल कहां है ? एक पाकिट से निकालकर दूसरे पाकिट में रखने की ही बात है। आखिर इससे जो आमदनी बढ़ेगी उससे मेरा भी तो लाभ है।

पति- होगा लाभ। पर लाभ के लिये धर्म की मर्यादा नहीं तोड़ी जासकती।

यह कहकर पति ने चूड़ियाँ पत्नी के हाथों पर रखदीं। पत्नी के सिरपर प्रेम से हाथ फेरा; और आंसूभरी आंखों से बाजार को प्रस्थान कर दिया।

पत्नी की आंखों से भी मोती निकले, और चूड़ियों पर गिरकर चमकने लगे। उन बूंदों में बाहर से तो क्या लहर दिखती, पर भीतर स्वर्ग लहरारहा था।

८ चिंगा ११९५६ ता. ११-११-५६

९- साड़ी

नरक

पत्नी— आज फिर हाथ डुलाते आगये ? एक साड़ी के लिये कितने दिन से कह रही हूं, पर तुम्हारी समझ में तो कुत्ती भोंक रही है। इसलिये उसपर ध्यान देने की क्या जरूरत है ?

पति- ध्यान देने से ही क्या होगा ? पैसे भी तो चाहिये। न तो पास में इतने पैसे हैं, न काम के मारे फुरसत मिलपाती है।

पत्नी- हां ! साड़ी के लिये पैसे भी नहीं और फुरसत भी नहीं। सूट के लिये नोटों का पुलन्दा निकल पड़ता है और हर दिन फुरसत भी।

पति— सूट तो साल डेढ़ साल के बाद सिलाया था, साड़ी तो हर महीने चाहिये। इतनी जल्दी जल्दी फरमाइशें कहां तक पूरी करूं ?

पत्नी— दो चार महीने में एकाध साड़ी मगाती हूं तो वह हर माह मगाना कहलाता है। बीसों बार एक ही साड़ी पहन-कर सहेलियों में जाती हूं। जब सब नई नई साड़ियाँ पहिनकर

आती हैं तब मुझे भिखारिन के समान बार बार वही साड़ी पहिन-कर जाना पड़ता है। मुझे तो मुँह दिखाने में भी शर्म आती है।

पति— कुछ नंगा तो जाती नहीं हो, न चिन्दियाँ लटका-कर जाती हो, न चोरी का माल पहिनकर जाती हो, तब शर्म की क्या बात है ?

पत्नी— तो जब मैं नंगी होकर या चिन्दी लटकाकर जाऊंगी तभी शरम की बात होगी ? सब तो रानियों सरीखी नई नई साड़ियाँ पहिनकर आयें और मैं उनकी नौकरानियों सरीखी एक ही साड़ी चिन्दी लगने तक लादे रहूँ ? यही भाग्य में बदा है। भगवान ने जन्म तो राजा के घर में देदिया पर पन्द्रह वर्ष के बाद वह भाग्य फोड़दिया जिससे कंगाल के घर में आना पड़ा।

पति— तो चली जाओ अपने राजा बाप के घर। कंगाल के यहां क्यों पड़ी हो ? बड़ी राजकुमारी बनने चलीं हो ! राजा बाप ने इतनी साड़ियाँ भी तो नहीं रखदीं कि चार छह साल तक काम चलता।

पत्नी— क्यों रखदे ? चाकरी करती हूं यहां, और कपड़े पहिनाये मेरा बाप ! बड़ी नाक के बने हो ! पत्नी को कपड़े पुराने तक की तो ताकत नहीं थी, और चले थे एक राजकुमारी से शादी करने !

पति— ऐसी कौनसी चाकरी करती हो ? दिनरात नाक में दम करने के सिवाय और तुम्हारा काम क्या है ? उसकेलिये क्या क्या दूँ और कितना दूं ? राजकुमारीपन का टेक्स और कितना लोगी ? खून ही तो चूसने को बचा है ?

पत्नी- तो मैं कसाई हूं, खून चूसनेवाली जोंक हूं। (अपना सिर पीटकर) हे भगवान, यह सब क्या लिखदिया है तुमने इस फूटे भाग्य में।

पति- (क्रोधावश में) आग लगे इस घर में। बाहर तो

जानवर की तरह जुतो और आराम के लिये घर आओ तो नरक में पचो ! यही जिन्दगी है। आग लगे इस जिन्दगी में और आग लगे इस घर में।

(बड़बड़ाता हुआ घर के बाहर चला जाता है)

पत्नी- हे भगवान ! अब नहीं सहा जाता। जल्दी मौत भेज ! जिन्दगी की जेल से छुटकारा दे।

स्वर्ग

पति- (बाहर से आते ही) रानी, जल्दी तैयार तो हो-जाओ; तुम्हें बाजार लेचलना है। मैंने तुम्हारे लिये एक दूकानपर अच्छी साड़ी देखी है। तुम चलकर पसन्द करलो तो खरीदलूं।

पत्नी- मैंने साड़ी की बात कब कही ? यह तुम्हें आज क्या सूझा ?

पति- तुमने तो कभी नहीं कही, न कहनेवाली हो, पर मेरे भी तो आंखें हैं। कितने वर्ष बीतगये, कामकाज की मामूली साड़ियों के सिवाय जाने आने के लिये कोई अच्छी साड़ी न खरीद सका।

पत्नी- जाने आने के लिये मेरे पास साड़ी तो बहुत अच्छी है; विवाह के समय की साड़ी नई के समान है।

पति- तुम्हारे जतन के मारे वह जिन्दगीभर नई रहेगी। पर बाहर जाते समय वार वार वही साड़ी पहिननेपर एक तरह की कंगाली मालूम होती है।

पत्नी- कैसी कंगाली ! क्या मैं किसी के सामने भीख मांगती हूँ ? क्या किसी के कपड़े देखकर ललचाती हूं ? मैं तो इस तरफ ध्यान भी नहीं देती कि कौन क्या पहिने हुए है। मुझे जो मिला है मैं उसमें सन्तुष्ट ही नहीं हूँ, खुश भी हूँ ?

पति- जिन्दगीभर के लिये एक ही साड़ी में खुशी ?

पत्नी- हां ! एक ही साड़ी में खुशी। जब जब मैं वह साड़ी पहिनती हूँ तब तब मेरे मन में वह सब खुशी भर जाती है जो विवाह के समय थी। और मालूम होता है कि मैं आज भी नई दुलहिन हूँ। दूसरी साड़ी कितनी भी अच्छी हो पर मेरी वह खुशी नहीं जगा सकती जो विवाह की साड़ी जगा देती है।

पति- पर दूसरी स्त्रियों को तो देखो, जरी और रेशम की साड़ियों से पेटियाँ भरे रहती हैं।

पत्नी- फिर भी तृष्णा, ईर्ष्या से जलती ही रहती हैं। कंगाल वह नहीं है जिसके पास सामान कम है ? कंगाल वह है जिसकी प्यास बुझ नहीं पाती। यदि मेरा मन भरा है तो एक ही साड़ी में अमीर हूँ ! यदि नहीं भरा है तो पचास में भी कंगाल हूँ।

पति- तब तो बड़ी मुश्किल हुई।

पत्नी- मुश्किल क्या ?

पति- बात यह है कि कई माह से एक अच्छी साड़ी खरीदने की इच्छा थी। उसके लिये धीरे धीरे रुपये भी जोड़ रहा था। आज वेतन मिलते ही इतने रुपये होगये कि घरखर्च के लिये बचाकर भी साड़ी खरीदी जासके, इसलिये मैंने दूकानपर जाकर एक मनपसन्द साड़ी खरीद ली। रुपये भी देदिये। इतनी शर्त जरूर कराली कि यदि पसन्द न आयगी तो दूसरी लूंगा। फिर रास्ते में विचार बदला। और यह तय किया कि साड़ी तुम्हें बताऊं ही नहीं, और दूकानपर लेचलूं। वहां तुम्हें जो पसन्द हो वही ले दूं। पर तुम चलने को तैयार नहीं हो तब वही साड़ी रह जायगी जो मैं ले आया हूँ और जिसका पुलन्दा बेग में रक्खा है।

पत्नी- यह तुमने क्या किया ? तुम्हारा कोट पुराना होचला है उसका तो इन्तजाम किया नहीं, और अचानक मेरे लिये साड़ी ले आये !

पति— दो चार माह की बचत में अब की बार कोट का

भी इन्तजाम कर लूंगा।

पत्नी- नहीं ! साड़ी वापिस कर दो। पहिले कोट बनवा-लो ! फिर साड़ी देखी जायगी।

पति- दूकानदार साड़ी तो वापिस न करेगा, सिर्फ नापसन्द होनेपर बदल देगा। सो देखलो, नापसन्द होनेपर बदल दी जाय।

पत्नी— तब बदलने की जरूरत नहीं है। साड़ी मुझे पसन्द है।

पति— पर तुमने वह देखी भी तो नहीं है, पसन्द कैसे होगई ?

पत्नी— मेरी पसन्दगी अपने लिये नहीं है, अपने राजा के लिये है। जब राजा ने ही उसे पसन्द कर लिया तो मुझे पसन्द करने को रहा ही क्या ?

यह कहकर पत्नी ने पति के गले में दोनों बाहें डालकर कन्धेपर सिर रखदिया।

पति भी पत्नी को एक हाथ से पकड़कर दूसरा हाथ सिर पर फेरने लगा।

दोनों की आंखों में प्रेम और हर्ष के आंसू भर गये।

और आंसुओं से चमकती हुई उन आंखों में स्वर्ग मुस-कराने लगा।

६ चन्नी ११९५६ इ. सं. ता. ७-१२-५६

१०- चेम्पियनशिप

नरक

पत्नी- अभी तो बाहर से आये हो, अब तुरन्त ही कहां चले ?

पति- क्लब जाना है और वहां टेनिस का अभ्यास करना है।

पत्नी- क्लब तो मुझे भी जाना है। मैं महिला क्लब में टेनिस की चेम्पियन हूँ। अपनी चेम्पियनशिप बनाये रखने के लिये मुझे प्रतिदिन अभ्यास करना ही चाहिये।

पति- मैं पुरुषों के क्लब का चेम्पियन हूँ इसलिये मुझे जाना जरूरी है। तुम भी अगर क्लबों में जाकर चेम्पियन बनने लगोगी तो बच्चों की चेम्पियनशिप कौन सम्हालेगा ?

पत्नी- क्या मैंने ही बच्चोंका ठेका लिया है ? क्या बच्चे सिर्फ मेरे हैं ? तुम्हारे नहीं ?

पति- स्त्री का कार्यक्षेत्र घर है इसलिये बच्चों का सम्हालना भी उसीका काम है। पुरुष का कार्यक्षेत्र बाहर है इसलिये क्लब की चेम्पियनशिप उसे ही सम्हालना चाहिये।

पत्नी- देखिये मिस्टर, जहां तक आर्थिक जिम्मेदारी का सवाल है, मैं अपनी जिम्मेदारी निभाती हूं। तुम बाहर का धंधा सम्हालते हो मैं घर का धंधा सम्हालती हूं। परन्तु जहां सार्वजनिक जीवन की बात है वहां मुझे भी घर के बाहर जाने का अधिकार है। तुम धंधे के लिये दिनभर बाहर रहते हो, इसलिये तुम्हें अब घर में रहना चाहिये। मैं दिनभर घर में रहती हूं इसलिये मुझे बाहर जाने का अवसर मिलना चाहिये। एक बाहर ही घूमता रहे और दूसरा घर में ही कैद रहे, यह अन्याय है।

पति- और स्त्री क्लब में जाकर टेनिस खेले और पति घर में रहकर बच्चे खिलाया करे, क्या यह न्याय है ?

पत्नी- इसमें अन्याय क्या है ? बच्चे कुछ अकेली स्त्री के नहीं हैं; पुरुष के भी हैं। तब पुरुष को उनकी जिम्मेदारी क्यों न सम्हालना चाहिये ?

पति- पर काम का जो बटवारा प्रकृति ने कर दिया है उसे मनुष्य कैसे बदल सकता है ?

पत्नी- प्रकृति ने जो जिम्मेदारी नारी पर डाल दी है उसे नारी उठाती ही है। प्रजनन की जिम्मेदारी से वह इनकार नहीं करती, दूध भी वह पिलाती है। परन्तु जब नारी बच्चों के लिये इतने कष्ट उठाती है तब बाकी काम नरको करना ही चाहिये।

पति- पशुओं में भी क्या कभी कोई नर बच्चों को सम्हालता है ? क्या वहां बच्चे सम्हालने का सारा काम मादा ही नहीं करती ?

पत्नी- पर हम पशु नहीं हैं। न पशुता हमारा आदर्श है। पशुओं में मादा बच्चों के लिये जितना काम करती है उतना काम मनुष्यों में नारी करती ही है। उसमें हिस्सा बटाने के लिये नर से कुछ नहीं कहा जासकता। परन्तु मानवता के विकास के लिये इसके आगे बहुत कुछ करना पड़ता है उसकी जिम्मेदारी पुरुष पर ही ज्यादा है।

पति- मतलब यह कि नारी के ऊपर सिर्फ पशुता की जिम्मेदारी है और मनुष्यता की जिम्मेदारी सिर्फ नर पर है ? तुम भी क्या बेशरम हो !

पत्नी- देखो मिस्टर ! जरा जबान सम्हालकर रक्खो, होल्ड योर टंग। मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, मालकिन हूँ, बराबरी की हूँ। इस तरह गाली देने का या अपमान करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।

पति- तुम मालकिन हो तो मैं क्या गधा हूँ ? जो मुझपर सारा बोझ लाद रही हो। जहन्नुम में जाय ऐसा घर जहां दिनरात गधे की तरह मुझे लदना पड़े। न मुझे किसी का पति बनना है, न किसी का बाप।

पत्नी- तो शादी क्यों की थी ?

पति- झख मराने के लिये।

यह कहकर पति क्लब के लिये चल दिया। पर उसका चित्त इतना विक्षिप्त था कि आज वह बिलकुल अनाड़ी की तरह खेलपाया। मामूली से मामूली खिलाड़ी ने उसे हरादिया। खिन्न हृदय से जब वह घर आया तब घर में अन्धेरा था। पत्नी शयनागार का दरवाजा भीतर से बन्द करके पड़ी पड़ी आंसू बहा रही थी। बाहर बच्चे रोरहे थे, रसोई का ठिकाना न था।

बाहर भी अन्धेरा, भीतर भी अन्धेरा, बाहर भी आक्रन्दन, भीतर भी आक्रन्दन, इस तरह घर में सब तरफ नरक छागया।

स्वर्ग

पत्नी— क्या आज आपको क्लब नहीं जाना है। बच्चों ने जाल में फँसालिया मालूम होता है ?

पति— न तो बच्चे जाल हैं न उनके साथ खेलना फसना है। सोचता हूँ कि तुम बहुत दिन से महिलाक्लब नहीं गई। ऐसा करोगी तो तुम्हारी चेम्पियनशिप चली जायगी। कभी कभी अपने क्लब जाकर टेनिस का अभ्यास करती रहो। आज मैं बच्चों को सम्हाले हुए हूँ, तुम क्लब होआओ।

पत्नी— टेनिस की चेम्पियनशिप से मेरा आनन्द नहीं है, बच्चों को सम्हालने और घर को सुखशान्तिमय रखने में यदि चेम्पियनशिप मिले तो जीवन सार्थक होजाय।

पति- इस विषय की चेम्पियनशिप तो तुम्हें मिली ही है, पर टेनिस की चेम्पियनशिप क्यों खोना चाहिये ?

पत्नी - बच्चे का बोझ पतिपर डालकर खेलकूद की चेम्पियनशिप लेने के लिये बाहर भागना नारी का कर्तव्य नहीं है।

पति— बच्चे क्या सिर्फ नारी के हैं, क्या नर की जिम्मेदारी नहीं है ?

पत्नी - है, पर प्रकृति ने ही नारीपर जो जिम्मेदारी डाल दी है उसमें नर क्या कर सकता है ? किसी भी जाति के प्राणियों में नर पर बच्चे के पालने की जिम्मेदारी नहीं आती।

पति— दूसरी जाति के प्राणियों की बात दूसरी है। वहां पालन करने का अर्थ सिर्फ दूध पिलाना या दाना चुगाना है। इतना काम तो मनुष्यों में नारी करती ही है। पर मनुष्य जाति के बच्चे को शारीरिक के सिवाय मानसिक दृष्टि से भी पालन करना पड़ता है, उसे सभ्य सुसंस्कृत शिक्षित बनाना पड़ता है। इस कार्य में क्या नर क्या नारी, दोनोंको समान रूपमें भाग लेना पड़ता है।

पत्नी— फिर भी नर का मुख्य कार्यक्षेत्र बाहर है नारी का घर। नारी को अपने कार्यक्षेत्र की अवहेलना कर बाहर कूदना शोभा नहीं देता।

पति- घर बाहर का यह भेद आर्थिक दृष्टि से है। बाहर मैं कमाता हूँ भीतर उस कमाई को उपभोग योग्य बनाकर और व्यवस्था रखकर तुम उसका मूल्य दूना तिगुना करती हो, इसप्रकार दोनों मिलकर आर्थिक समस्या हल करते हैं। पर अर्थ ही तो जीवन नहीं है। काम या आनन्द की दृष्टि से कुछ सार्वजनिक जीवन भी तो होता है। वहां पुरुष के समान नारी को भी सुविधा चाहिये।

पत्नी- जरूर चाहिये। पर अपनी जिम्मेदारी पूरी निभाने के बाद ही चाहिये। अपनी जिम्मेदारी पतिपर डालकर नहीं।

पति- तब तो तुम्हें कभी बाहर जाने की सुविधा मिल

ही नहीं सकती।

पत्नी- मिल सकती है। यदि न मिलती तो मैं टेनिस में चेम्पियन न होजाती। मैं उसके लिये भी समय निकाल लूंगी। और न निकाल पाऊंगी तो टेनिस का चेम्पियन होना जिन्दगी का ध्येय नहीं है। ये सब मन बहलाव की बातें हैं। और बच्चों से बढ़कर मन बहलाव और किसमें है ?

पति- अच्छा तो आज मैं भी यही मन बहलाव कर रहा हूं। तुम काम से निपट जाओ, फिर बच्चों को लेकर अपन दोनों बाहर चलेंगे। दिनभर अकेला बाहर रहता हूं, अब शामको अकेला कहां जाऊं ?

पत्नी- पर तुम्हारी चेम्पियनशिप ?

पति- उँह ! यह चेम्पियनशिप अब कुमारों को या निःसन्तानों को रिजर्व रहने देना ही ठीक है। हमारी चेम्पियनशिप का क्षेत्र अब दूसरा है।

पत्नी- कर्तव्य का ?

पति- हां ! कर्तव्य का और प्रेम का।

यह कहकर पति ने पत्नी के मुँह पर एक चुम्बन अंकित कर दिया। और यह प्रेमानन्द देखकर स्वर्ग भी लजागया।

५ सत्येशा ११९५७ इ. सं.   ता. ५-१-५७

११- गरीबी

नरक

पति- (पत्नी को आंसू बहाती हुई देखकर) अब किस बात का मातम मनाया जारहा है ? जब देखो तब मुँह लटका हुआ, आंसू बहते हुए, मानों हर दिन घर में कोई न कोई मरता ही रहता हो।

पत्नी- मरता नहीं रहता तो क्या होता है ? एक दो मौतें

हर दिन तो होती हैं।

पति- हर दिन मौतें ? कहां से टपकते हैं ये मरनेवाले ? घर में हम तुम दो ही तो हैं, सो न तुम मरीं न मैं मरा, ठूंठ के ठूंठ दोनों ही तो खड़े हैं।

पत्नी- बहुत दिन न खड़े रहेंगे ये ठूंठ। एक न एक जल्दी ही गिरजायगा। मेरी जिन्दगी लम्बी नहीं है।

पति- जिन्दगी किसकी लम्बी है ? और कौन लम्बी करना चाहता है इस घर में ? नरक से पिंड ही तो छूटेगा। पर मौत आये भी। बुलाने पर भी तो मौत किसी को लेने नहीं आती। तब समझ में नहीं आता कि हर दिन मौतें किसकी होती हैं; जिसका यह मातम बनाया जारहा है।

पत्नी- तन का मरना ही तो मरना नहीं है, असली मरना तो मन का है, अरमानों का है। सो जिस दिन से घर में आई हूँ, किसी दिन जरासा भी अरमान पूरा नहीं हुआ। हर दिन अरमान पैदा होते हैं और मरते हैं। अब मातम न मनाऊं तो क्या करूं ?

पति— क्या अरमान पूरा नहीं हुआ तुम्हारा ? क्या भूखों मरती हो ? क्या नंगी रहती हो ?

पत्नी— पेट के खड्डे में कुछ ठूंस देने से ही अरमान पूरे नहीं होते। महीनों से घर में घी नहीं है, चुटकीभर शक्कर नहीं है, न कभी सिनेमा देखपाती हूँ, न कहीं यात्रा कर पाती हूँ। दो से तीसरी साड़ी घर में नहीं है। वर्ष में एकाध बार भी धोबी से कपड़े नहीं धुलापाती। कपड़े धुलाने डालूं तो पहिनूं क्या ? और फिर धुलाने के लिये पैसा कहां से लाऊं ? पड़ौसिनों को देखदेखकर झूरती हूँ और अपने अरमानों का गला दबाती रहती हूं ? रूखे टुकड़े तो कुत्तों को भी मिलते हैं पर आदमी आदमी की जिन्दगी जीना चाहता है।

पति- कुत्तों का कुत्तापन सूखे टुकड़ों में नहीं है। कुत्ते मोटरों में भी बैठते हैं और तर माल भी खाते हैं पर इससे वे आदमी नहीं बनजाते। आदमियत स्वाभिमान और आत्मगौरव में है; जोकि गरीबी में भी रह सकता है। पर उसी आदमियत की तुममें कमी है। भीतर जब कुत्तापन भरा हो तब आदमी की शक्ल मिलने से क्या होता है ?

पत्नी— (आक्रोश में) मुझमें कुत्तापन भरा है ? मैं कुत्ती हूँ ? अरमानों को मसलमसलकर तिलतिलकर मर रही हूँ क्या इसीलिये कुत्ती हूं ? इस फूटे भाग्य के कारण तुम्हारे पल्ले पड़गई हूँ क्या इसीलिये कुत्ती हूँ ?

पति- (क्रोध से) अरे अरमानों की रानी, अपने अरमानों को लेकर वहीं चली जा, जहां तेरे अरमान फलें फूलें। मुझसरीखे कंगाल पर कृपा का बोझ न लाद। किसी लक्ष्मी के वाहन उल्लू का घर बसा।

(यह कहकर तमतमाता हुआ चेहरा लेकर पति दूसरे कमरे में जाकर खाटपर गिरगया। पत्नी भी बैठे बैठे इस तरह जमीन पर गिरी कि यह पता लगाना मुश्किल होगया कि वह जमीन से सिर फोड़ना चाहती है या सिर से जमीन फोड़ना चाहती है।)

(नरक ने आकर दोनों को जकड़ लिया और इस तरह जकड़ लिया कि दोनों का दम तो घुटने लगा पर छटपटाने की गुंजाइश न रही।)

स्वर्ग

फल तो महीनों घर में न आते थे पर भाजी भी दुर्लभ थी। कुछ तोले दाल पतली पतली उबालकर काम चलाया जाता था। एक शहर में पच्चीस रुपये महीने पर एक ईमानदार कुटुम्ब

का निर्वाह जिस तरह होसकता है उसी तरह होरहा था। पति जब आज नौकरी से घर आरहा था तब उसने सोचा- पाकिट में दो पैसे हैं। अगर होसके तो इनकी भाजी ही लेलूं। पर दो पैसे में क्या भाजी आयगी, इसी चिन्ता में था कि उसकी नजर गाजरों पर पड़ी। गाजरें एक आने सेर मिल रही थीं। आधा सेर गाजरें लेकर वह घर चला। मन ही मन वह रुकुंचा रहा था कि कई हफ्ते बाद दो पैसे की शाक ले जारहा हूँ। रानी न जाने मनमें क्या कहेगी। घर पहूँचने पर उसकी हिम्मत न हुई कि रानी के हाथ में गाजरों की थैली देदे। चुपचाप गाजरों की थैली एक खूंटी-पर लटकाकर पत्नी से कुछ इधर उधर की चर्चा कर एक किताब लेकर बैठ गया। पर उसमें उसे अक्षर न दिखे। सारा पन्ना सिनेमा का पर्दा बनगया।

हाइस्कूल में पढ़ते समय उसके स्वप्न, फिर विवाह, फिर नौकरी, और गरीबी के सात वर्ष, जिनमें मितव्ययिता की घटनाएँ ही ओतप्रोत थीं. आदि एक पर एक दृश्य उसके सामने आने लगे। जब वह इन्हीं दृश्यों में डूबा हुआ था तभी रानी ने एक भरी हुई बसी उसके सामने लाकर रक्खी।

रानी ने कुछ गाजरों को अच्छी तरह साफकर, धोकर, उसके लम्बे लम्बे और पतले पतले टुकड़े बनाकर बसी में सजाकर रक्खे थे। अगर गाजर फीकी हो तो उसका फीकापन दूर करने के लिये चुटकीभर नमक भी था।

दो पैसे में से आधे पैसे की गाजरों का यह नखरा देखकर पति चकित होगया। शाक के लिये लाईगई गाजरों को उसकी रानी ने फल भी बना दिया था। उसने एक नजर गाजरों पर डाली और दूसरी रानीपर। परम तपस्विनी और स्नेहमूर्ति रानी को देखकर उसका हृदय भर आया। आंखे गीली होगईं। उसने रानी का पल्ला खींचकर बिठलालिया। और उसके कन्धेपर सिर रखकर

फबक पड़ा। पति पति न रहा बच्चा होगया।

गरीबी के कारण पति का हृदय बहुत खिन्न रहता है, रानी को इसका पता था। इसलिये पति की इस विह्वलता से उसे आश्चर्य न हुआ। दुःखी जरूर हुई। पर दुःख गरीबी का नहीं था, पति की वेदना का था, सहानुभूति का था।

आंचल से पति के आंसू पोंछकर वह बोली—मुझे यह समझ में नहीं आता कि अगर हम गरीब हैं तो इसलिये हमें दुःखी क्यों होना चाहिये ? न हम भूखों मरते हैं, न नंगे रहते हैं, न किसी के आगे हाथ पसारकर इज्जत लुटाते हैं, न बेईमानी से परमेश्वर को नाराज करते हैं। जब पेट भरा है, शरीर स्वस्थ है, मन गौरवपूर्ण और पवित्र है, तब दुःख का कारण क्या है ?

पति- रानी ! तुम देवी हो। न जाने किस ध्येय से इस मर्त्यलोक में अपनी अलौकिक लीला दिखाने आई हो, अन्यथा विवाह के बाद के सात वर्ष जिस गरीबी में कटे हैं और तुम्हें जो तपस्या करना पड़ी है उसे कोई पत्नी क्षमा नहीं कर सकती।

पत्नी- पर मुझे भी कहां क्षमा करना पड़ रही है। कोई अपराध हो तो क्षमा भी करूं, जब तुम्हारा अपराध ही नहीं तब क्षमा भी क्या करूं ? तुम बेईमानी से धन नहीं कमाते क्या इसे अपराध मानूं ? पूरी मिहनत करते हो क्या इसे अपराध मानूं ? जब सारा देश गरीब है तब हम भी गरीब हैं इसमें न तो ज्यादा दुःखी होने की बात है, न इसमें तुम्हारा कोई अपराध है।

पति- यह ठीक है कि देश की अधिकांश जनता हम सरीखी गरीब ही है, पर लाखों आदमी हमारी अपेक्षा काफ़ी अमीर हैं, खासकर अड़ौस पड़ौस के सभी लोग धनी हैं। उनके सामने तुम्हारी दयनीय दशा देखकर मेरे हृदय में रातदिन हाहाकार मचा रहता है। मैं अकेला होता तो कच्चा अन्न चबाकर भी दुःखी न होता, पर तुम्हारा यह अपमान असह्य है। इतने प

भी जब तुम्हारी शान्ति प्रेम सेवाभाव सन्तोष और श्रमशीलता का विचार करता हूँ तब तो मैं अपनी ही नजरों में ऐसा अपराधी बनजाता हूँ कि अपने को ही क्षमा नहीं कर पाता।

पत्नी- देश के इस विषम वितरण को दूर करने के लिये हम आन्दोलन करेंगे, या हो ही रहा है। पर यदि वह सफल नहीं होरहा है तो क्या तुम यह चाहते हो कि मैं असन्तुष्ट होकर तुमसे लड़ने लगूं ?

पति- ऐसा करोगी तो मुझे इतना सन्तोष जरूर होगा कि मेरे दुर्भाग्य का मुझे दंड मिल गया और थोड़े बहुत अंश में मेरा ऋण चुकगया।

पत्नी ने मुसकराते हुए कहा—तब तो मैं तुम्हें इतने सस्ते में ऋणमुक्त नहीं कर सकती।

पति ने भी मुसकराते हुए कहा—यह तुम्हारी कुछ ज्यादती है।

पत्नी ने कहा— मेरी ज्यादती एक नहीं अनेक हैं। और एक ज्यादती यह भी है........

यह कहते हुए पत्नी ने गाजर का एक टुकड़ा बसी में से उठाकर पति के मुँह में देदिया।

पति ने भी इस ज्यादती का बदला इसी ज्यादती से दिया। उसने भी गाजर का एक टुकड़ा उठाकर पत्नी के मुँह में देदिया।

इन गाजर के टुकड़ों में दोनों को जो स्वाद आया वह स्वर्ग के नन्दनवन के फलों में देवताओं को भी दुर्लभ है।

५ मम्मेशी ११९५७ इ. सं. २-२-५७

१२-असुन्दरी

नरक

पत्नी— शाम को लौटते समय बाजार से पाउडर की डब्बी तो लेते आना !

पति-पाउडर ! क्या करोगी पाउडर का ? कोयले को राख में लपेटने से क्या वह हीरा बन जायगा ? और क्या सफेदी पोतने से शक्ल भी बदल जायगी ? भाग्य तो जितना फूटना था सो शादी के समय फूट चुका, अब ऊपर से यह बेकार के खर्च का दंड क्यों ?

पत्नी- तुम्हारा भाग्य फोड़ने के लिये मैं जबर्दस्ती हथौड़ा लेकर तो आई नहीं, तुम्हारी गरज थी तभी तो तुम शादी के लिये तैयार हुए थे। सब काम देख परखकर ही तो किया था। उस समय आज की आंखें कहां चरने चली गई थीं ?

पति- क्या बताऊं कहां चली गई थीं ? भाग्य फूटता है तब आंखें भी बेकाम होजाती हैं।

पत्नी- बेकाम तो नहीं हुई थीं, मेरे पिता जी के नोटों के पुलन्दे गिनने में लगी हुई थीं। तुमने धन के लिये शादी की थी सो मुफ्त का माल पालिया, इसमें भाग्य क्या फूटा ? भाग्य तो फूटा मेरा, जिसे एक कंगाल के घर में पड़कर जिन्दगीभर के लिये जानवर बनना पड़ा। सबेरे से शाम तक काम में जुती रहूँ और घास खाती रहूँ, बस यही तो मेरा भाग्य है।

पति- तो तुमने ही शादी के लिये इनकार क्यों न कर दिया ! मेरा भाग्य भी फूटने से बचता और तुम्हारा भाग्य भी फूटने से बचता।

पत्नी- मैं क्या समझती थी कि तुम ऐसे धोखेबाज हो। उस समय तो ऐसे बन ठनकर और शान शौकत से पहुंचे थे मानों

कोई शाहजादा हो ! मेरा तो जैसा चेहरा था, जैसा रंग था, तुम्हारे सामने था, पर तुम्हारी कंगालियत और कंजूसी तो तुम्हारे चेहरे पर पुती नहीं थी कि मैं देखलेती। धोखा देकर मेरे पिता को लूटा और मेरा भाग्य लूटा फिर भी बेशरमी से अपने भाग्य फूटने की बात कहते हो।

पति- मैं शादी न करता तो शायद कोई शाहजादा ही तुमसे शादी करलेता।

पत्नी-धनका शाहजादा न करता तो न करता,पर मनका शाहजादातो, करता। तुमतो धनसेभी कंगालहो। और मनसेभी कंगाल हो।

पति- तो अभीभी क्या बिगड़ा ? तलाक का कानून बन ही गया है तलाक देदो !

पत्नी- हां ! तलाक दे दूं। पिता जी के रुपये हड़प गये, शादी में इतना खर्च कराया और मेरा कौमार्य नष्ट कर दिया और अब तलाक की बात करते शर्म नहीं आती ? अब तो जिन्दगी के इने गिने दिन इसी नरक में निकालना है सो निकालूंगी।

पति- पाउडर लादेता तो शायद यह नरक न बनता।

पत्नी- जहन्नुम में गया पाउडर ! पाउडर पोतकर मुझे अपने पर नहीं रीझना था। वह सब तुम्हारे लिये था।

पति- पर इस तरह नकली सुन्दरता से रिझाने का काम वेश्याएँ करती हैं।

पत्नी—जरूर करती हैं पर करती हैं पैसा झटकने के लिये, रिझाने की कीमत वसूल करने के लिये। वेश्यापन रिझाने में नहीं है, उसकी कीमत वसूल करने में हैं, आदमी पर नहीं, पैसेपर नजर रखनेमें है। मैं रिझानेके पैसेवसूल करने नहीं बैठी हूँ।

पति— तो खाती क्या हो ?

पत्नी—रिझाने का नहीं खाती हूँ, मजदूरी का खाती हूँ। जितनी मैं मजदूरी करती हूं उतनी मजदूरी करनेवाली नौकरानी

रखकर देखो, पता लगेगा कितना खर्च आता है और कितनी निश्चिन्तता मिलती है।

(इस चर्चा में पतिपर जो तमाचेपर तमाचे पड़े उससे वह तिलमिला गया और भनभनाता हुआ बाहर चलागया। पत्नी भी सिर पीटती हुई खाटपर गिर पड़ी और मानसिक बेचैनी से इसप्रकार छटपटाने लगा जैसे कोई नरक में छटपटा रहा हो।)

स्वर्ग

पत्नी-आज बाजार से किस चीजकी डब्बियाँ लेआये हो ?

पति—कुछ नहीं तुम्हारे लिये जरा स्नो और पाउडर लेता आया हूँ।

पत्नी ने हँसकर कहा—कोयला पर सफेदी फेरने से वह संगमरमर तो बन न जायगा ?

पति- पर काली होने से हर चीज कोयला नहीं होती। कस्तूरी भी काली होती है, कोयल भी काली होती है और श्रीकृष्ण भी काले थे, पर इसीलिये ये कोयला थोड़े ही बनगये।

पत्नी- उनकी कीमत उनके गुणों से है। बहुत से गुणों में एकाध दोष यों ही डूब जाता है।

पति—तो तुम्हारी कीमत भी तुम्हारे गुणों से है। तुम्हारी सेवा अनुरक्ति बुद्धिमत्ता चतुरता आदि गुणों में असुन्दरता का दोष यों ही डूब जाता है।

पत्नी—तब स्नो पाउडर की क्या जरूरत ?

पति —श्रीकृष्ण को भी बढ़िया पीताम्बर और कौस्तुभ मणि की जरूरत थी।

पत्नी— परिधान की बात दूसरी है। पर ऊपर की पोतापाती से नकली सुन्दरता तो ठीक नहीं मालूम होती।

पति— सुन्दरता स्वयं ऊपर की पोतापाती है। अन्यथा शरीर के भीतर हाड़-मांस में क्या सुन्दरता है ?

पत्नी—फिर भी वह पोतापाती टिकाऊ है।

पति— कैसी टिकाऊ! वह भी चार दिन की चांदनी है! और उसका स्वाद तो दो दिन से अधिक नहीं आता। सुन्दरता से कुछ काम तो होता नहीं है, बस, देखने भर का मजा है। सो हर समय एक सी ही चीज देखते रहने से उसका मजा भी फीका पड़जाता है। काममें तो गुणही आते हैं। सच्ची सुन्दरता वही है।

पत्नी क्षणभर चुप रही, उसकी आंखों में आनन्दाश्रु भर-आये। फिर बोली-मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ कि तुम सरीखे देवता को पागई। मुझे पाकर तुमने न जाने कितना खोया होगा पर मैं तो तुम्हें पाकर मालामाल होगई हूँ।

पति— किसी ने कुछ नहीं खोया रानी! मेरी जितनी हैसियत थी उससे अगर सुन्दरता खरीदने जाता, तो गुणों का लाभ न पाता। सुन्दरता की कीमत चुकाने में ही मेरा सब कुछ लुट जाता। इसलिये मैंने जरूरी चीजों का सौदा किया; बेजरूरी चीज को छोड़ दिया, उसको खरीदने की ताकत नहीं थी।

पत्नी— क्या सुन्दरता के दाम देने पड़ते हैं!

पति — सबके दाम देना पड़ते हैं रानी! किसी के दाम प्रत्यक्ष रूपमें एक साथ देने पड़ते हैं, किसी के धीरे धीरे अप्रत्यक्ष रूपमें देने पड़ते हैं। सुन्दरियाँ सेवा नहीं देतीं और खूब श्रृंगार वसूल करती हैं और फिर उनके नाज नखरे भी होते हैं। तुम्हीं बताओ! इतना दाम चुकाने की मेरी हैसियत कहां थी? सुन्दरता खरीदने जाता तो तुम्हारे अमूल्य गुणों से हाथ धो बैठता।

पत्नी-पर पुरुषों में सुन्दरता की चाह तो रहती ही है।

पति- पुरुषों में ही क्यों, स्त्रियों में भी रहती है। कोई भी स्त्री बदसूरत पुरुष नहीं चाहती। यह दूसरी बात है कि पैसों के कारण स्त्री बदसूरत पुरुषसे भी शादी करले। यह उसकी चाह नहीं है सौदे का हिसाब है। क्योंकि जिन्दगी की गुजर सुन्दरता

से नहीं होती।

पत्नी—फिर भी स्त्रियों की अपेक्षा अधिकांश पुरुष सुन्दरता पर मरते हैं।

पति- यह ठीक है। दुनिया में मूर्खता की कमी नहीं है। कई लोग सफेद गिलासमें मैला पानी पीना पसन्द करते हैं; कई मिट्टी के सकोरे से दूध पीना पसन्द करते हैं।

पत्नी ने हँसते हुए कहा—अच्छी बात है! लेलेती हूं तुम्हारा स्नो पोउडर। शायद मिट्टी का सकोरा चीनी मिट्टी का बनजाय।

कमरे में दोनों का अट्टहास गूंज गया। दोनों स्वर्गीय आनन्द में किलोलें करने लगे।

२४ तुपी ११९५७ ११-७-५७

१३- सुन्दरी

नरक

पत्नी— आग लगे इस सुन्दरता पर! कैसे सम्हालूं इसे? घर में कोई चीज भी हो?

पति- तो तुम्हारी इस सुन्दरताकी वेदीपर किसे बलि चढ़ा दूँ? तुम्हारी सुन्दरता की पूजा की सामग्री जुटाते जुटाते तो दिवाला निकला जारहा है।

पत्नी— ऐसा क्या चढ़ा दिया तुमने मेरी सुन्दरता पर? वे ही दो चार साड़ियाँ ही न? पर मामूली से मामूली औरत के पास भी ऐसी साड़ियाँ होती हैं। इधर स्नो का कई दिनों से पता नहीं है। पाउडर ऐसा लाये थे मानों सड़ककी धूल बटोर लाये हो।

पति- तो तुम्हारे पाउडर के लिये हीरे कहांसे पिसवाऊं? जब ये शृंगार लादना ही थे तो सुंदरता किसलिये लादी थी? जो सुंदरी नहीं होती वही नकली सुन्दरता पोता करती है। पर तुम तो सहज सुंदरी हो, तुम्हें इस पोतापाती की क्या जरूरत?

पत्नी— सोने में सहज ही चमक होती है तो क्या उसके भूषणपर पालिस नहीं किया जाता ?

पति—पर सोने पर पालिस तो खरीदने के समय के लिये ही होता है। खरीदने के बाद हर दिन पालिस नहीं करना पड़ता। जब तुम्हें खरीदा था तब खूब पालिस चढ़ा दिया था, अब हर दिन पालिस कहां से लाऊं ?

पत्नी—तो मेरी सुंदरता खरीदी थी तुमने ? क्या था तुम्हारे पास मेरी सुन्दरता खरीदने लायक ?

पति—पर तुम्हारी सुंदरता चांट तो ली नहीं है मैंने ? वह तो तुम्हारे ही पास है। उससे मैं तो सुंदर बन नहीं गया। सिर्फ देख लेता हूं। सो देखने की कितनी कीमत ? फिर बदले में तुम भी तो मुझे देख लेती हो।

पत्नी—हां, बड़ी देखने लायक शक्ल है न आपकी ? जरा दर्पण में मुँह देखो ! बंदर देखनेकी मंशा पूरी होजायगी।

पति—तो पैसा चूसनेने किये बंदरसे शादी की थी आपने ?

पत्नी— क्या चूसलिया तुम्हारा ? घर सम्हालने के बदले दो चिंदियाँ पहिन लेती हूँ और दो रोटियाँ खा लेती हूं, यही न चूसना कहलाता है ? अगर इतने में ही चूसने का डर था तो किसलिये किसी सुंदरी को जाल में फसाया था ?

पति— (क्रोध से) क्या फसालिया जालमें ? और क्या बाँधकर रक्खा है मैंने ? मैं बंदर हूँ; कंगाल हूँ; तुम्हारी सुंदरता का दाम चुकाने लायक मेरे पास कुछ नहीं है। तब जहां ग्राहक मिले वहीं जाओ। मुझ कंगाल का पिंड छोड़ो।

पत्नी— (घृणा और तुच्छता के भाव के साथ) अब तो इसी तरह बकोगे ? सुंदरता बेंचने का धंधा करनेवाली वेश्या हूँ न ? सुंदरी न होती तो दुनिया भर में आंखें सेंकते फिरते ? और मेरा मजाक उड़ाते ? नरक तो मैंने देखा नहीं, पर नरक कैसा होता

होगा इसका अनुभव कर रही हूं।

(भनभनाती हुई दूसरे कमरे में चली जाती है)

स्वर्ग

पत्नी- परमात्मा ने जो थोड़ी बहुत सुंदरता मुझे दी है क्या उतने से आप संतुष्ट नहीं हैं ?

पति- इस विषय में तो मैं अपना भाग्य ही सराहा करता हूँ, असंतोष की बात तो मैं सपने में भी नहीं कहता।

पत्नी- (मुसकराते हुए) शब्दों से तो आप सपने में भी नहीं कहते और जागते में भी नहीं कहते, पर बात कहने के दूसरे भी तो तरीके हैं ?

पति—मेरे तो खयाल में भी नहीं आता कि किसी भी तरीके से मैंने असन्तोष प्रगट किया है।

पत्नी- तो ये स्नो पाउडर आदि किसलिये लाये हो राजा !

पति- इनके लाने में असंतोष की क्या बात है रानी !

पत्नी- अगर सहज सौंदर्य से ही संतोष है तो इन नकली प्रसाधनों की क्या जरूरत ?

पति—सोने के आभूषणों पर भी कुछ न कुछ पालिश किया जाता है रानी ! मूल में योग्यता होती है तभी तो उसे सुसंस्कृत किया जाता है। अन्यथा कोयले पर पालिश कौन चढ़ाता है ?

पत्नी- पर सोने पर पालिश तो एक बार चढ़ाया जाता है हर दिन नहीं चढ़ाया जाता। सो विवाह के समय इतना पालिश चढ़ा दिया था, इतने प्रसाधन ला दिये थे कि वर्षों पूरे नहीं हुए थे। अब बार बार लाने की क्या जरूरत ?

पति—लोग तो पत्थर की देवी को हर दिन भेंट चढ़ाते है, तब क्या मैं जिन्दा देवी को भेंट न चढ़ाऊं।

पत्नी— पर मैं अपने देवता को भेंट चढ़ाने के लिये क्या पाऊंगी ?

पति—तुम्हारी सेवा की भेंट तो इतनी अधिक है कि उसके बदले में वरदान देने लायक देवता के पास कुछ है ही नहीं ? इसके सिवाय तुम्हारी यह सुंदरता भी तो मेरे ही लिये भेंट है। उसका मजा तो मैं ही लूटता हूं। तुम तो सिर्फ सुंदरता का बोझ ढोती हो।

पत्नी- पर इस बात में भी मैं घाटे में नहीं हूं। मेरी सुंदरता का मजा तुम लूटते हो; तुम्हारी सुंदरता का मजा मैं लूटती हूँ।

पति- (हँसकर) तो तुम मुझे भी सुंदर समझती हो ?

पत्नी—समझने का सवाल ही नहीं है, तुम सुंदर हो ही। आजकल मूछ आदि रखने का रिवाज तो रहा नहीं है, अब यदि मैं तुम्हें साड़ी पहिनादूं तो तुम अच्छी से अच्छी सुंदरियों में खप सकते हो।

पति- कमाल किया तुमने। सुंदरता की प्रशंसा के लिये सखा को सखी का सन्मान देकर प्रशंसा की पराकाष्ठा कर दी तुमने। पर क्यों रानी ? जब तुम्हारी नजर में मैं सहज ही इतना सुंदर हूं तब मुझे सजाने की क्यों कोशिश करती रहती हो। मेरे कपड़े स्वच्छ रहें, चमकते रहें बालों में तेल पड़ा रहे, कंघी की हुई हो, आदि छोटी छोटी बातों का ध्यान क्यों रखती हो, और मेरे ही करने का कोई शृंगार मैं न करूं तो तुम क्यों कर देती हो ?

पत्नी— तुम्हारी सुंदरता का मैं अधिक से अधिक मजा लूटना चाहती हूं; इसलिये जो कुछ ठीक समझती हूं करती हूं।

पति— तब मैं भी तुम्हारी सुंदरता का मजा लूटना चाहता हूं इसलिये जो कुछ ठीक समझता हूँ करता हूं; तब सुंदरता के प्रसाधान लाने में इतराज क्यों ?

पत्नी- बातों में तुम बड़े चतुर हो राजा ! तुम्हें जीतना कठिन है। पर सच बात तो यह है कि ये ये सब नखरे करने में मुझे शर्म मालूम होती है।

पति- तो तुम न किया करो ये नखरे; मैं कर दिया

करूंगा, पाउडर लगादिया करूंगा, कहो तो वेणी गूंथ दिया करूंगा ?

पत्नी- (मुसकराते हुए) चलो हटो ! तुम मेरा मजाक करते हो।

पति- तो क्या बुरा करता हूं ? मजा और मजाक में आखिर फर्क ही कितना है ?

पत्नी—पर कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?

पति —कुछ न कहेगा। स्वर्ग के देवता भी अपनी नकल करने को तरसने लगेंगे।

(दोनों मुसकराती हुई आंखों से एक दूसरे को देखते हैं।)

१९ सत्येशा ११९५८ इ. सं. १९-१-५८

१४- पकान्न

नरक

पति- सबेरे तो मैंने जरासा ही पकान्न खाया था, क्या शाम को कुछ नहीं बचा ? सभी तुमने निगल लिया ?

पत्नी- निगलने को था कितना सा, तुम्हारे खाने के बाद थोड़ासा बचा था सो जरासा मैं चखपाई। इसे तुम निगलना कहते हो ?

पति- इतना तो बना था, फिर भी तुम थोड़ा सा कहती हो ? शायद बनाते बनाते ही आधे से ज्यादा तुमने पार कर दिया होगा। पीछे बचेगा क्या ?

पत्नी — क्या मैं इस तरह चोरी से खाती हूँ ? इसप्रकार झूठा दोष मढ़ते तुम्हें शरम नहीं आती ?

पति- कई बार तो मैंने खाते पकड़लिया है।

पत्नी- बड़े पकड़नेवाले ! कोई चीज अच्छी बनी कि नहीं, इसकी परख करने के लिये थोड़ासा चख लेना चोरी से खाना कहलाता है ?

पति- इसी चखाई में तो आधी चीज पार होजाती है। तुम्हारा तो वश चले तो तुम एक टुकड़ा भी मुझे न दो। मैं तो सिर्फ ढोनेवाला बैल हूँ, चरने का ठेका तो तुम्हीं ने लिया है?

पत्नी- हां! लिया तो है? तभी तुम बाजार में बाहर के बाहर माल उड़ाते रहते हो। अगर कभी कोई चीज घरमें लाते भी हो तो मेरे हाथ में आने के पहिले आधी से ज्यादा साफ कर जाते हो! और कभी तो एक टुकड़ा भी नहीं देते? बड़ी कमाई करते हो न? इतनी कमाई से होटल में जाकर खाना पड़े तो पहिले ही महीने दिवाला निकल जाय। यह तो मैं ही हूं जो तुम्हारा भी पेट भर देती हूं, और पकान्न भी खिला देती हूं। कोई नौकरानी रक्खो तब पता लगेगा कि इतनी में क्या बचा पाते हो और क्या खापाते हो? पर कहूं किससे? भाग्य ही खोटा है! इतनी तपस्या करती हूं, अधपेट रहती हूं, रूखा सूखा खाती हूं फिर भी चोर कहलाती हूं? हायरे भाग्य!

(सिर पीट लेती है)

पति-क्या ढोंगी औरत है! बनाते बनाते आधा पार करजाती है। छिपाकर बचारखती है। और सामने परोसने लाती है तो उसमें भी आधे से ज्यादा हिस्सा बचा लेती है फिर भी तपस्या की बात करती है? धिक्कार है ऐसे अघोरीपन को। चल,अब तू ही खा ले। मुझे पकान्न भी नहीं चाहिये और अन्न भी नहीं चाहिये। खा भी लूंगा तो तेरे हाथ का पचेगा नहीं।

(यह कहकर भनभनाता हुआ थाली फेंककर उठ बैठता है।

स्वर्ग

पत्नी- जरा चखो तो, मिठाई कैसी बनी है; शक्कर कम या ज्यादा तो नहीं है?

पति- आज तक तो तुमसे कम ज्यादा शक्कर हुई नहीं है। चखने की क्या जरूरत है?

पत्नी- न हुई होगी। पर इस बहाने देवता को नैवेद्य चढ़ जाय तो क्या बुरा है ?

पति – पर नैवद्य सिर्फ देवता को नहीं चढ़ाया जाता, देवी को भी चढ़ाया जाता है। तुम भी चखकर देखलो न ?

पत्नी- अपने हाथ से बनी चीज क परीक्षा अपने हाथ से नहीं होती।

पति— क्यों नहीं होती ? हाथ से काम करने से जीभ में क्या बिगाड़ आजाता है ?

पत्नी- बिगाड़ तो नहीं आता, फिरभी परीक्षा नहीं होती। " निज कवित्त केहि लागि न नीका " जैसे अपनी कविता हर एक को अच्छी लगती है उसकी परख कोई दूसरा ही करता है; उसी प्रकार अपने हाथ से बनी चीज की भी बात है।

पति- हारा बाबा तुमसे ! तुम कोरी अन्नपूर्णा ही नहीं हो, सरस्वती भी हो। लाओ चखलूं। पर यह पहिले ही कह देता हूं कि मिठाई बहुत अच्छी बनी है।

पत्नी— पहिले से समझ कुछ भी लो पर कहना चखने के बाद ही।

(पति अट्टहास करता है)

शामको भोजन करते समय पत्नी ने फिर मिठाई परोस दी। पति को मिठाई देखकर आश्चर्य हुआ। बोला-यह क्या किया तुमने ? क्या तुमने सबेरे मिठाई बिलकुल नहीं खाई ?

पत्नी- खाई क्यों नहीं ? काफी खाई ? पर सब की सब एक ही बार में कैसे खाजाती ?

पति— पर थी कितनी सी ? मुझे ही तो तुमने इतनी परोस दी थी कि मैं खा नहीं सकता था। बर्तन में तो जरासी दिख रही थी।

पत्नी-जरासी क्यों ? अभी भी काफी है ?

पति- मतलब यह है कि तुमने बिलकुल नहीं खाई ?

पत्नी— बिलकुल क्यों नहीं खाई ? काफी खाई; तुम्हारा प्रसाद मैं कैसे छोड़ सकती हूँ ?

पति- मतलब यह है कि अधिक होजाने से मैंने जो मिठाई थाली में से अलग कर दी थी उतनी ही खाई ।

पत्नी— नहीं और भी खाई थी ।

पति- गलत बात है ? अब मैं इस समय मिठाई न खाऊंगा।

पत्नी- खाओगे कैसे नहीं ? मैं खिलाकर छोड़ूंगी ।

(यह कहकर पत्नी ने मिठाई का टुकड़ा उठाकर पति के मुँह में देदिया)

पति- तो मैं भी तुम्हें खिलाकर छोड़ूंगा ।

यह कहकर पति ने भी मिठाई का टुकड़ा उठाकर पत्नी के मुँह में देदिया । दोनों में होड़ सी मचगई कि कौन किस को ज्यादा मिठाई खिला देता है । इस क्रीडा के सामने देवताओं की भी क्रीड़ा फीकी पड़गई ।

५ धनी ११९५७ इ. सं. उदयरात्रि २;से ३॥ बजे

१५- काम का बोझ

नरक

पत्नी- बस ! बाहर से घूमघामकर आये कि बैठगये बाजा लेकर । दिनभर बाहर रहने पर भी दिल नहीं बहल पाता कि घर में आते ही दिल बहलाव की सूझती है । इधर दिनभर काम में जुती जुती थक जाती हूँ । यह नहीं होता कि पांच मिनिट काम में हाथ बटा दो ।

पति- क्या काम में हाथ बटा दूँ ? चूल्हा फूंकूं ? बर्तन मलूं ? दिनभर बैल सा जुतकर कमाई करूं, बाजार से गैल सा लदकर सामान लाऊं, सिर्फ उसे पकाकर खाने खिलाने का भी काम तुमसे नहीं होता ! बाहर जुतूं; लदकर आऊं तो भी पांच

मिनिट विश्राम नहीं, यहां भी आकर जुतूं । तुम दिनभर पैर पसारे सोती रहो । जब मैं थककर आऊं तो जरासे काम में मुझे भी जोतो ।

पत्नी- मैं दिनभर सोती रहती हूं ? अँधेरा रहते ही उठकर काम में लग जाती हूं और तुम्हें चराकर विदा करने के बाद भी पहर भर बासन बर्तन आदि काम में लगा रहना पड़ता है । इतने में मुझे जितने घंटे काम करना पड़ता है उतने घंटे तो तुम्हें बाहर काम नहीं करना पड़ा ।

पति- दो घंटे का काम तुम दस घंटे में करो तो इसके लिये कोई क्या करे ? मैं न रहूँ तब पड़ोसिनों से गप शप करना या पैर पसारे सोना और जब मैं आजाऊं तब जरा जरा से काम के लिये आह कराह मचादेना । तुम्हारी इन आहों के मारे न खाने में स्वाद रहता है न घर में बैठने को जी चाहता है ।

पत्नी- ठीक है, मेरे खाने में विष मिला रहता है तो मेरे हाथ का न खाया करो ! होटलों में खाया करो । फिर घर किसलिये बसाया था ?

पति- झख मराने के लिये । ऐसा क्या मालूम था कि देवी जी ऐसी निकलेंगी । उन्हें पति नहीं बैल की जरूरत है जो सदा जुता करे और कैसा भी घास खालिया करे ।

पत्नी- तो कौन कहता है तुमसे घास खाने के लिये ? न मुझे घास खिलाना है, न खाना है । आग लगे इस जिन्दगी पर ।

(पत्नी बर्तन फेंक देती है, चूल्हे में पानी डाल देती है)

पति- अब जिन्दगी में क्या आग लगेगी ? आग तो उसी दिन लगगई जिस दिन शादी हुई थी ।

(बड़बड़ाता हुआ घर के बाहर चलाजाता है । दोनों नरकाग्नि में जलने की वेदना का अनुभव करने लगते हैं ।)

स्वर्ग

पत्नी— यह क्या करने लगे ? दिनभर काम में जुते जुते आये, और आते ही शाक बनाने बैठगये घड़ीभर विश्राम तो करो।

पति— यह विश्राम ही तो है। जिस काम से थक कर आया हूं वही काम थोड़े ही कर रहा हूँ। मुर्दे की तरह पड़जाना विश्राम नहीं है। श्रम का बदलना ही श्रम का विश्राम है।

पत्नी—यह तत्वज्ञान मैं क्या समझू; मैं तो मूरख हूँ, सीधी साधी बात जानती हूँ।

पति- पत्नी जब मूरख बनती है तब उसकी सुन्दरता दुगुनी होजाती है। इसलिये संस्कृत में मुग्ध शब्द का अर्थ मूर्ख भी है और सुन्दर भी।

पत्नी- मैं तो संस्कृत सब भूलभाल गई। पर यह मोटी बात समझती हूं कि पति दिनभर काम करके आये और आते ही उसे काम में जोत देना पत्नी के लिये लज्जा की बात है।

पति- तो क्या तुम लजाती हो ?

पत्नी- नहीं तो क्या ?

पति - तब तो बहुत अच्छी बात है। जब पत्नी लजाती है तब उसकी सुन्दरता चौगुणी होजाती है।

पत्नी- आज यह सुन्दरता मापने का थर्मामीटर कहां से पागये ?

पति- यह थर्मामीटर बाजार में नहीं मिलता। यह तो पत्नी ही दिया करती है।

पत्नी— हारी बाबा तुमसे। अच्छा तो यह शाकभाजी रहने दो। रेडियो लगालो। इस समय रेडियो पर अच्छा नाटक आनेवाला है। उससे तुम्हारा दिल बहलेगा और मैं भी सुनती जाऊंगी।

पति— किस बात का नाटक है ?

पत्नी— घर गृहस्थी की बातों का ही होगा, शायद पति पत्नी की बातों का ही हो।

पति—देखो रानी, जब हाथ में असली गुलाब हो तब कागज का नकली गुलाब सूंघने की इच्छा नहीं होती। जब हम पतिपत्नी बैठे हैं, प्रेमसे बातें करते हैं, एक दूसरे के काममें मदद करके पूरक बनरहे हैं, इस प्रकार जब सच्चे नाटक का मजा लूट रहे हैं तब नकली नाटक में क्या मजा आसकता है।

पत्नी- तुमसे जीतना बहुत मुश्किल है।

पति— तो जीतना चाहती हो ?

पत्नी—नहीं ! इस हार में ही जीतने की अपेक्षा कई गुणा मिठास है।

(दोनों मुसकराने लगे और उनके चेहरे दिव्य आनन्द से खिलगये)

१ सत्येशा ११९५८   १-१-५८

१६-मूर्तिपूजा

नरक

पति— सबेरे से किधर चली ये सवारी ? पत्थरों से सिर फोड़ने के लिये ?

पत्नी— पत्थरों से सिर तो सभी फोड़ते हैं। मसजिद में; चर्च में; चैत्यालय में, स्थानक में, सभी जगह तो पत्थर हैं ? तुम भी तो कहीं न कहीं जाते ही हो। तो क्या सिर फोड़ते हो ?

पति- मैं वहां पत्थर की मूर्ति के आगे सिर थोड़े ही पटकता हूँ।

पत्नी- सिर कौन पटकता है ? विनय प्रगट करना सिर पटकना नहीं है ?

पति- पत्थर का विनय ?

पत्नी-पत्थरका नहीं, पत्थरमें दिखाई देनेवाले भगवानका।

पति- उस ठोस पत्थर में भगवान कहां बैठता होगा ?

पत्नी — किताब पर पुती हुई स्याही में ज्ञान कहां बैठता है ? यदि स्याही में ज्ञान भरा है तो पत्थर मेंभी भगवान भरा है।

पति-यदि उस पत्थर को ठोकर मार दूं तो तुम्हारा भगवान लुड़कता नजर आयगा ?

पत्नी- यदि किताब चूल्हें में झोंकदूं तो तुम्हारा ज्ञान भी राख बनता नजर आयगा ?

पति— क्या गमार औरत है !

पत्नी- गमार तो हूं, पर बदतमोज नहीं हूँ।

पति-मैं बदतमीज हूँ ?

पत्नी- तुम बड़े से बड़े बदतमोज हो । मूर्ति न मानने वाले दुनिया में लाखों हैं पर वे इस तरह बदतमीजी नहीं दिखाते ? भगवान को ठोकर मारने का महापाप नहीं करते ?

पति— पर बदतमीजी नहीं दिखाऊं तो क्या करूं ? तुम्हारे इस गमारपन के कारण दोस्तों में मुँह दिखाना मुश्किल होगया है ? मुझे यह कहते शर्म मालूम होती है कि एक गमार औरत मेरी पत्नी है ?

पत्नी- और मुझे अपनी सहेलियों में कैसा मालूम होता होगा जब वे समझती हैं कि एक बदतमीज आदमी मेरा पति है ।

पति- तो बदतमीज के साथ क्यों रहती हो ?

पत्नी-झख मारने के लिये । (सिर पीटकर) इस फूटे भाग्य को क्या करूं ? जिसने एक अधर्मी के साथ मुझे बांधदिया है। (यह कहकर पूजा की सामग्री जमीनपर फेंककर भीतर चलीजाती है। पति भी भन्नाता हुआ बाहर चला जाता है)

स्वगं

पत्नी- अगर बुरा न मानों तो एक बात कहूं !

पति—(नकली गम्भीरता के साथ, हँसी दबाते हुए) भई, पहिले से बुरा न मानने की शर्त कबूल करना तो मुश्किल है। बात कहो, बुरा न मानने को होगी तो बुरा क्यों मानूंगा ? और बुरा मानने की होगी तो बुरा मानना ही पड़ेगा । फिर भले ही पीछे तुम मनालो और मैं मानजाऊं ?

पत्नी- तुम तो जब देखो तब मज ाक किया करते हो।

पति— इसमें मजाक की क्या बात है; जो बातें जैसी थीं वैसी कह दीं।

पत्नी— अच्छी बात है, मानजाना बुरा और मैं फिर मनालूंगी। बात यह है कि आज पर्व का दिन है इसलिये मैं भगवान की विशेष रूपमें पूजा करना चाहती हूँ। इसलिये केशर चन्दन फूल ऊदबत्ती कपूर और प्रसाद के लिये कुछ सामग्री बाजार से लाना है। तुम लेआओगे ?

पति — ओ हो ! बुरा मानने की बात तो बड़ी तोप ही निकली। पर रानी जी, मैं समझ नहीं पाया कि इसमें बुरा मानने की आशंका करने लायक क्या बात थी ?

पत्नी-तुम खुद मूर्तिपूजा नहींकरते इसलिये यहआशंका हुईथी।

पति — तुम ललाट में कुंकुम लगाती हो मैं नहीं लगाता, गले में हार पहिनती हो मैं नहीं पहिनता, हाथों में चूड़ियाँ पहिनती हो मैं नहीं पहिनता, मुखमण्डल पर स्नो पाउडर लगाती हो मैं नहीं लगाता,तो क्या इन चीजोंको बाजारसे लानेमें इतराज करता हूँ?

पत्नी— श्रृंगार की बात दूसरी है।

पति— जब तन के श्रृंगार में इतराज नहीं है तब मन के श्रृंगार में इतराज क्यों होगा ? धर्मका श्रृंगार तो मनका श्रृंगार है।

पत्नी— जो श्रृंगार कोई पुरुष नहीं करता वह तुम भी नहीं करते इसलिये श्रृंगार की चीजें लाने की बात समझमें आती है। पर मूर्तिपूजा तो बहुतसे पुरुष भी करते हैं फिर भी जब तुम नहीं करते तब मालूम होता है कि उससे तुम्हें पूरी घृणा है इस-

लिये तुमसे पूजा की सामग्री मंगाने में संकोच होरहा था।

पति— भूलती हो रानी, अगर मैं मूर्ति का विरोधी होता तब भी तुम्हारे धार्मिक कार्योंमें मदद करना अपना कर्तव्य समझता। फिर तो मैं मूर्तिपूजा का विरोधी नहीं हूं, मूर्ति के द्वारा भगवान की पूजा मैं भी करता हूं। पर मन्दिरों में आजकल मूर्तिपूजा की विडम्बना होरही है इसलिये वहां नहीं जाता। वीतराग की मूर्ति का रसिकों सा शृंगार, मूर्ति को ह देव मानकर उसमें झूठे चमत्कार, उसकी पूजा करके अपने पाप माफ कराने की मांग और फिर ज्यों के त्यों पाप करते रहने की वृत्ति; इससे मूर्तिपूजा बहुत घातक होगई है! इसीलिये मेरी उस तरफ रुचि नहीं है। बाकी मेरी रानी, जो पवित्र से पवित्र और सेवामय जीवन बिताती है, वह अगर पूजा के द्वारा आनन्द का अनुभव करती है तो उसके काम में हाथ बटाने में मुझे कोई इतराज नहीं है।

पत्नी- मैं तो जहां तक बनता है कोई पाप नहीं करती, फिर भी जिन्दगी में पाप तो होता ही है इसलिये परम कृपालु भगवान अगर पाप माफ न करेंगे तो कौन करेगा; और फिर आदमी का उद्धार कैसे होगा?

पति- पाप के त्याग से आदमी का उद्धार होगा, माफी से नहीं। कल्पना करो, कोई मेरी हत्या कर जाये और भगवान की खूब पूजा करके माफी मांग ले और भगवान माफ भी करदे और उसे स्वर्ग भी देदे, तब तुम्हें कैसा लगेगा? और सारी दुनिया पर इसका क्या असर पड़ेगा? क्या लोगों को पाप का डर रहेगा?

पत्नी की आंखें भर आईं। वह पति से लिपटकर बोली- नहीं, ऐसी माफी मैं नहीं चाहती, और ऐसी मूर्तिपूजा भी मैं नहीं करना चाहती।

पति- बस! तो ऐसी ही मूर्तिपूजा मैं नहीं करता हूं। बाकी भावना जगाने के लिये मूर्ति का, या चित्र आदि का अवलम्बन लेने

में मुझे कोई इतराज नहीं है। और पूजा का क्रियाकांड एक तरह का मन बहलाव है, काम है। और काम भी एक पुरुषार्थ है इस दृष्टि से मैं उसका विरोधी नहीं हूं। इस खेल में रुचि न होने से मैं भले ही न खेलूं पर मेरी रानी को इस खेल में यदि मजा आता है तो उसकी सामग्री तो जुटा ही दूँगा, साथ ही कभी उसके साथ खेलने में भी शरीक होजाऊंगा।

पत्नी- मेरे राजा, आज तुमने मेरी आखें खोलदीं और मेरे मनका बोझ भी उतार दिया। इसलिये आज मैं तुम्हारी ही पूजा करूंगी। उसी में भगवान की पूजा है।

पति- नहीं ! मेरी पूजा तो तुम दिनरात सदा करती ही हो। दिनरात मेरे आराम के काम में लगी रहती हो। यही तो मेरी पूजा है। अब उसके खेल की क्या जरूरत है ? आज तो भगवान की पूजा का खेल ही मिलजुलकर खेलेंगे।

पत्नी- मेरे कारण तुम्हें आज पुजारी बनना पड़ा।

पति- पगली रानी, पुजारिन का पति पुजारी नहीं होता तो क्या होता है ?

(दोनों मिलकर हँसने लगे। इस अद्वैत के सामने वेदान्त का अद्वैत भी फीका पड़गया और स्वर्ग का वैभव भी।)

४ टुंगी ११९५७ इ. सं. १६-८ ५७

१७- श्रेय

नरक

पति—(मेहमान मित्रों से) आप लोग जब पधारते हैं तब मुझे बड़ी खुशी होती है। भोजन करते समय जब तक कोई मेहमान साथ में न बैठे तब तक मुझे भोजन में स्वाद नहीं आता। पर मेरी श्रीमती जी इस बात को बिलकुल नापसन्द करती हैं। पैसा तो मेरा खर्च होता है पर उनके तो बनाकर खिलाने में भी

प्राण निकलते हैं। इसलिये मिहमान को बुलाते समय मुझे बड़ा डर मालूम होता है।

मेहमान- विधाता भी न जाने कैसा है। किसी का जोड़ा नहीं मिलाता। पति को देवता बना देता है तो पत्नी को राक्षसी।

पति- (गहरी सांस लेकर) भाग्य की बात है; किससे क्या कहा जाय ?

मेहमान- पर कितने अचरज की बात है। उनके मनमें इतना भी विचार नहीं आता कि 'मेरे पति का दुनिया में नाम है; प्रतिष्ठा है, सम्बन्ध है। सब प्रेम के लिये उनके यहां आते हैं अन्यथा रोटी कहां नहीं है। पर इन प्रेम की रोटियों से जितना नाम और इज्जत बढ़ती है उतनी सैकड़ों रुपया देने पर भी नहीं बढ़ती।

पति- क्या बताऊँ ? उन्हें तो ईर्ष्या है। सोचती हैं श्रेय मिलता है इनको, और पिसती हूँ मैं।

मेहमान- क्या औंधी खोपड़ी है। पति के नाम से भी ईर्ष्या ! कमाल है ! इसे ही कहते हैं घोर कलजुग।

(इतने में रसोई घर में से किसी बर्तन के गिरने की आवाज आई। पति ने देखा तो अधपकी दाल का वर्तन औंधा पड़ा था, दाल का पानी चूल्हे में गिर गया था और चूल्हा बुझ गया था। दाल बिखरी पड़ी थी। पति के पहुँचते ही पत्नी ने कहा—)

पत्नी- मेरी तबियत खराब है। मुझसे अब कुछ बन न सकेगा। तुम अपने भाटों की सेना को होटल में लेजाओ।

पति- होटल में कितना खर्च आयगा मालूम है ?

पत्नी- मुझे यह सब जानने की जरूरत नहीं है। कमाने-वाले तुम, खर्च करनेवाले तुम। जितना खर्च करोगे उतना ही नाम होगा। सो खूब नाम पैदा करो। उसमें बाधा डालकर मैं राक्षसी नहीं बनना चाहती। जब नाम खूब है, कमाई खूब है तब

खर्चने से क्यों डरते हो ?

पति— पर घर आये मेहमानों को भोजन कराने को होटल लेजाऊं इसमें तुम्हारी नाक न कटेगी ?

पत्नी— घर घर डिंडोरा पीटदो कि मैं नकटी हूँ, राक्षसी हूँ। पर मुझसे दुनियाभर का लौंडपन न होगा। सब मेरा ही खून पीते हैं और मुझे ही गाली देते हैं। सो दें गाली। किसी के कोसने से मैं मर न जाऊंगी. और मर जाऊंगी तो नरक से पिंड ही छूटेगा।

पति— अच्छी बात है, लेजाता हूँ मेहमानों को होटल में, और खुद भी चला जाता हूं जहन्नुम में।

(यह कहकर पति मेहमान वाले कमरे में आया। पर मेहमान खिसक चुके थे। यह जानकर कि पत्नी की सारी बातें मेहमानों ने सुनलीं और वे चलेगये, पति को बड़ा क्षोभ हुआ। और क्रोध में अपना सिर दीवार से देमारा। दीवार से सिर मारने की आवाज से पत्नी चिरपरिचित थी इसलिये उसे आवाज से ही पता लगगया कि पति ने दीवार से सिर मारा है तब वह भी अपना सिर पीटने लगी।)

दो कमरे, दो प्राणी और दो नरक।

स्वर्ग

पति— (मेहमानों से) आप लोगों के पधारने से मुझे तो खुशी है ही, पर सब से ज्यादा खुशी है मेरी श्रीमतीजी को। मेरा काम तो सिर्फ **आप लोगों** को निमन्त्रित करना था बाकी सारी तैयारी का श्रेय तो उन्हीं को है। कितना काम बढ़गया है, पर जरा भी परेशानी का अनुभव नहीं करतीं।

मेहमान— सचमुच आप बड़े भाग्यशाली हैं। ऐसी ही देवियों से घर स्वर्ग के समान बनजाते हैं। लखपति होना सरल है पर ऐसी सद्गृहिणी का मिलना दुर्लभ है। सद्गृहिणी के बिना

तो लखपतियों के घर भी नरक ही दिखाई देता है। लाखों की सम्पत्ति है पर चैन से खा नहीं सकते, बड़े बड़े महल हैं पर चैन से बैठ नहीं सकते। पर जहां भाभी जी सरीखी देवियाँ होती हैं वहां झोपड़ियों में भी स्वर्ग चमकता रहता है।

(इतने में रसोई घर से थालियों के खनखनाने की आवाज आई। पति ने जाकर देखा तो भोजन के लिये थालियाँ लगाईं जारहीं थीं। पत्नी ने कहा — भोजन तैयार है, बुलाओ सब को। सब आकर बैठ गये।)

पत्नी — (पति से) तुम भी बैठजाओ। भोजन तो तैयार ही है।

पति — मैं परोसने को रहता हूं। बाद में बैठूँगा।

पत्नी — परोसने का काम ऐसा क्या बड़ा है। थोड़ीसी पूड़ियां बची हैं सो मैं परोसते परोसते तल लूंगी। अथवा शुरु में एक बार परोसलो। तब तक मेरा काम पूरा हुआ जाता है। फिर मेहमान कोई पराये थोड़े ही हैं। परोसने में थोड़ी बहुत गलती होगी तो वे क्या माफ न करेंगे?

मेहमान — माफ करने का सवाल ही नहीं है भाभीजी! हम तो सब सामग्री पास में ही रख लेना चाहते हैं। जिससे परोसवाने की जरूरत ही न पड़े और चुपके चुपके दो दिन के लिये कोठी भरलें।

पत्नी — भरली कोठी! सब मालूम है मुझे। ऐसा होता तो मैं अकेली ही सब के लिये भोजन तैयार न कर पाती। न जाने कितनी पड़ौसिनों को बुलाना पड़ता।

मेहमान — काम तो पड़ौसिनों को बुलाने-लायक ही था भाभीजी, पर आपकी कर्मण्यता के आगे काम को भी हार मानना पड़ती है। फिर भी दुनिया का अन्धेर तो देखो! काम आप करती हैं और नाम भाई जी का होता है।

पत्नी — पर आपके भाई जी के काम के आगे मेरा काम ही कितना है। कमाया उनने। एक एक चीज बाजार से लाये वे। यहां तक कि मेरे रोकते रोकते शाक भी उनने बनाई। अब मेरे लिये ठंडे को गरम करने के सिवाय और रह ही क्या गया था।

पति— जी हां ! कुछ नहीं रहगया था। मैं सारी चीजें एक घंटे में खरीद लाया था पर ठंडे को गरम करने के लिये चार घंटे से चूल्हे के सामने तपस्या होरही है। जो मैं आठ घंटे में भी न कर पाता।

पत्नी— यह तो अपने अपने काम की आदत है। मेरे काम में तुम्हें देर लग सकती है तुम्हारे काम में मुझे देर लग सकती है। इसप्रकार काम की तौल नहीं होती।

मेहमान— न होने दीजिये तौल। पर हम तो सारा श्रेय आप को ही देंगे।

पत्नी— किसी को भी दीजिये ! श्रेय रखने की अलग अलग पेटियाँ हमारे पास नहीं हैं। एक ही पेटी है और उसकी चाबी दोनों के पास रहती है। उन्हें श्रेय दीजिये तो आधा हिस्सा मेरा, और मुझे श्रेय दीजिये तो आधा हिस्सा उनका।

मेहमान— यह तो मन समझाने की बात हुई भाभीजी ! दुनिया तो भाई जी का ही नाम लेती है। पर यह अन्धेर हम न होने देंगे।

पत्नी— पूरी दुनिया का आपको पता नहीं है, इसीलिये आप इसे अन्धेर समझते हैं। पुरुषों की दुनिया ही पूरी दुनिया नहीं है। दुनिया में आधी स्त्रियाँ भी हैं। इसलिये आधी दुनिया पुरुषों की और आधी दुनिया स्त्रियों की। कोई भी घर पुरुषों में पुरुषों के नाम से विख्यात होता है और स्त्रियों में स्त्रियों के नाम से। इसीप्रकार घर को मिलनेवाला श्रेय भी स्त्रियों में स्त्रियों के नाम से विख्यात होता है और पुरुषों में पुरुषों के नाम से। इसमें मन समझाने की बात नहीं है, वास्तविकता है।

मेहमान— भाभी जी, आप तो पूरी दार्शनिक भी हैं।

पत्नी— दर्शन फर्सन मैं क्या जानूं ? मैं तो इतना जानती हूं कि दुनिया में मर्यादा के साथ सब से प्रेम करना चाहिये।

मेहमान— तब तो आप दार्शनिकों से बहुत बड़ी हैं। क्योंकि दर्शन तो स्वर्ग की सीढ़ी है, जब कि प्रेम स्वयं स्वर्ग है।

पति— मैं तो सोचा करता हूँ कि स्वर्ग में वैभव भले ही ज्यादा हो, पर प्रेम उसमें ज्यादा होगा इसकी कल्पना मैं नहीं कर सकता, इसलिये स्वर्ग का कोई लोभ मेरे मनमें नहीं है।

मेहमान- हम लोग परमात्मा से दुआ मांगते हैं कि आप लोगों को स्वर्गवासी कहने का मौका कभी न आये।

सारे कमरे में हँसी गूँजगई। अगर स्वर्ग के कान होंगे तो उस कमरे की बातचीत सुनकर वह जरूर ईर्ष्या कर रहा होगा।

११ धनी ११९५६ इ. सं. उदयरात्रि ३ बजे

१८- नरनारी

नरक

नर- आखिर तुम औरतें किसी काम की नहीं। बुजदिल, मूर्ख, निकम्मी और जिन्दगी का बोझ।

नारी- फिर भी मर्दों से औरतें हजार गुणी अच्छी हैं। मर्द क्या है ! अत्याचारी; डांकू; लुटारू; और शैतान।

नर- मर्द ही तो कमाकर लाता है और औरत का पेट भरता है; क्या इसीलिये वह डांकू और लुटारू है ? घर बाहर सब जगह औरत की रक्षा करता है क्या इसीलिये वह अत्याचारी है ?

नारी- औरतों को औरतों से रक्षा कराने के लिये मर्द की कभी जरूरत नहीं होती। वे सब अत्याचार मर्दों के ही हैं जिनसे रक्षा करने का मर्द दम भरता है। मर्द अत्याचारी शैतान न होता तो औरतों को किसी से रक्षा कराने की क्या जरूरत थी ? रही

कमाने की बात. सो औरत जितना काम करती है उसका चौथाई भी मर्द नहीं करता।

नर- करती होगी, पर उसकी कीमत क्या ?

नारी- यही तो मर्दों का लुटारूपन है कि औरत इतना काम करती है पर उसके काम की कीमत उसे नहीं देता और मर्द आधा भी काम नहीं करता फिरभी सबका मालिक बनजाता है।

नर- पर काम की कीमत में काम के घंटे ही नहीं देखे जाते उसका दर्जा भी देखा जाता है। औरत का काम मामूली मजदूर से ज्यादा क्या है ?

नारी- यह सब मर्दों का पक्षपात और अत्याचार ही तो है। बापदादों की पूंजी वह हड़प लेता है, और पूंजी के बलपर ऊंचे दर्जे का कमाऊ बनजाता है। वह पूंजी औरत को मिले तो वह भी कमाऊ बनजाय। यह सब मुफ्तखोरी का कमाऊपन है इसमें कौनसी बहादुरी है ?

नर- मर्द बापदादों की पूंजी हड़प नहीं लेता, किन्तु वह उसके लायक है इसलिये उसे दीजाती है। बड़ा व्यापारी; डाक्टर वकील शासक आदि का कार्य मर्द ही करता है इसलिये उसीको बापदादों की पूंजी देना उचित है। औरत के हाथ में पूंजी जायगी तो बैठे बैठे खा डालनेके सिवाय वह करेगी क्या ?

नारी- बैठे बैठे क्यों खा डालेगी ? वह वे सब काम करेगी जो मर्द करता है। नारियाँ डाक्टरीमें, वकालत में, कला के कार्य में, यहां तक कि उद्योग व्यापार धंधे में मर्दों से जरा भी कम नहीं हैं। जहां उनको मौका मिला वे इन सब कामों में बढ़कर निकली हैं। बाली द्वीपमें नारियल के झाड़ोंपर चढ़कर एक हाथ से अपने को लटकाकर दूसरे हाथ से नारियल तोड़ने का काम नारियाँ ही करती हैं, सारा उद्योग धंधा नारियाँ ही सम्हालती हैं। वर्मा में भी यही हाल है। नारी को मौका मिले तो नारी मर्दों के काम

में कभी पीछे नहीं रहती। जब कि मर्द नारी का काम कर नहीं सकता? न वह बच्चे पैदा कर सकता है, न बच्चे पाल सकता है। नारी की सेवा और योग्यता के सामने मर्द की सेवा और योग्यता पासंग बराबर भी नहीं है। उसका अगर कोई दोष है तो यही है कि वह मर्दों पर विश्वास करती है और उनके साथ उदारता का व्यवहार करती है।

नर- बाहरे विश्वास और बाहरी उदारता! तभी तो म. बुद्ध को कहना पड़ा कि स्त्री कितनी भी विदुषी हो, वृद्धा हो, चिरपरिचिता हो, प्रेम प्रगट करती हो, उसका विश्वास कभी न करना चाहिये।

नारी— कहा होगा; बुद्ध भी तो आखिर मर्द थे सो अपनी जात पर गये। जिस नारी के खून की बूंद बूंद से मर्द का शरीर बना है, खून का दूध बनाकर जिसने उसका पालन किया है, मां बनकर जिसने जीवन दान दिया, पत्नी बनकर जिसने जीवन में स्थिरता पैदा की, सारे विश्वासघातों को जिसने क्षमा किया, उस नारी को इस प्रकार लाञ्छित करना यही तो मर्दों का महात्मापन है। धिक्कार है ऐसे महात्मापन को!

नर— महापुरुषों की भी निन्दा करते तुम्हें शर्म नहीं आती?

नारी— महापुरुष कहलानेवालों को जब कृतघ्नता विश्वासघात करते शर्म नहीं आई तब मुझे सच्ची बात कहने में क्या शरम आयगी? जिस सीता ने सब कुछ छोड़कर पति का जिन्दगीभर साथ दिया उसे धोखे से जंगल में छुड़वाने वाले रामचन्द्र महापुरुष हैं? अधिकार और वैभव के दमपर हजारों स्त्रियों को पत्नी बनाकर गुलाम बनानेवाले कृष्ण भी महापुरुष हैं? अपनी पत्नियों के साथ विश्वासघात करनेवाले, अपने जीते जी उन्हें विधवा बनानेवाले, और कृतघ्न बनकर स्त्रियों की दिनरात झूठी निन्दा करने वाले बुद्ध महावीर भी महापुरुष हैं? और सन्त

कहलानेवाले वे सब निकम्मे भगोड़े मुफ्तखोर भी महापुरुष हैं जो स्त्रियों से ही जीवनदान पाते हैं और स्त्रियों की निन्दा करते हैं? ऐसे लोगों के गीत गाना ही शर्म की बात है, धिक्कार करने में शर्म की क्या बात हैं?

नर— अब तुमने हद कर दी। महापुरुषों की निन्दा मैं एक क्षण भर भी नहीं सुनसकता।

नारी— नहीं सुनसकते तो कान बन्द करलो। नारियाँ तो पीढ़ियों से अपनी झूठी निन्दा सुनती चली आरही हैं, तुम एक मिनिट भी सच्ची आलोचना नहीं सुन सके।

नर— (क्रोध से) मैं कान बन्द करलूं पर तुम अपनी जीभ बन्द न करोगी?

नारी— पुरुष तो अन्याय अत्याचार बन्द करने को तैयार नहीं, तब स्त्रियों से जीभ बन्द करने के लिये कहने का क्या अधिकार है?

नर— जब पुरुष ऐसा अन्यायी अत्याचारी है तब उसके पास रहती क्यों हो? चली जाओ मेरे घर से।

नारी— क्यों चली जाऊं? मैं कोई जबर्दस्ती तुम्हारे घर में रहने नहीं आई थी। तुम्हीं नाक रगड़ते हुए मेरे यहां आये थे और मुझे मालकिन या पत्नी बनाकर लाये थे। मैं घर की मालकिन हूँ इसलिये तुम्हीं चलेजाओ मेरे घर से।

नर— अच्छी बात है, मैं ही चला जाता हूँ। तुम डकैत की तरह लूट लो मेरा घर। (भनभनाता हुआ चला जाता है।)

नारी— लूटकर क्या मुझे खाना है इस घर को? मैं इस घर में आग लगा दूंगी। (घर का सामान उठाउठाकर फेंकने लगती है।)

स्वर्ग

नर— ओह! यदि नारी न हो तो संसार में रहे ही क्या?

सब वीरान होजाय। सत्यं शिवं सुन्दरम् में सुन्दरम् है तो नारी है। सच्चिदानन्द में आनन्द है तो नारी है।

नारी— पर शिवं न हो तो सुन्दरम् क्या? चित् न हो तो आनन्द क्या? नारी का आधार तो पुरुष ही है। शिव वही है, चित् वही है।

नर—सुन्दरम का आधार शिवं नहीं है दोनों का आधार सत्यं है। चित् और आनन्द का आधार भी सत् है।

नारी— मैं परमाधार की बात नहीं कर रही हूँ, मैं प्रगट आधार की बात कर रही हूं। पुरुष कमाकर लाता है तब नारी का 'सुन्दरम्' बनता है, आनन्द प्रगट होता है। प्रगट आधार पुरुष ही है।

नर— यह तो कार्य की सुविधा की दृष्टि से समाज के द्वारा किया हुआ काम का बटवारा है। अन्यथा नारी भी कमा सकती है। अनेक जगह वह कमाती भी है बल्कि बाली वर्मा आदि देशों में मुख्यता से नारी ही कमाती है। यों जहां वह न कमानेवाली कही जाती है वहां भी वह काफी कमाती है। पुरुष के द्वारा कमाया हुआ अन्न थाली में पहुंचते पहुँचते कई गुणी कीमत का हो जाता है। मनुष्येतर प्राणियों में कोई मादा नर के आश्रित नहीं रहती। वह अपना पेट आप भरती है और बच्चे का भी भरती है; जब कि नर अपना ही पेट भरपाता है। इसप्रकार अर्जन और पालन पोषण में मादा ही बाजी मारती है।

नारी— मनुष्येतर प्राणियों की बात दूसरी है। वहां कमाने का अर्थ सिर्फ बटोरना है। वे न खेती करते हैं न उद्योगों से निर्माण करते हैं। बटोरने में नारी पीछे नहीं रहती, वह धीरे धीरे बहुत बटोर लेती है पर बड़ा सवाल तो निर्माण का है।

नर— निर्माण में भी पुरुष नारी की बराबरी नहीं कर सकता। सब से बड़ा निर्माण तो मनुष्य का ही निर्माण है जिसके

निर्माण में नारी का हिस्सा निन्यानवे प्रतिशत है।

नारी— मानव शरीर के निर्माण में जरूर नारी का हिस्सा निन्यानवे प्रतिशत है परन्तु मानवशरीर ही तो मानव नहीं है। मानवता जिन गुणों से आती है उन गुणों का निर्माण तो पुरुष ही कर सकता है।

नर— नारी की मानवशरीर के निर्माण में पुरुष से कई गुणी शक्ति लगजाती है इसलिये अन्य निर्माण के लिये उसके पास समय और शक्ति कम रहपाती है। पशु जगत् में जरूर इससे नारी को हीन मानलिया जाता है, परन्तु मानव जगत् में भी यदि उसकी सेवाओं का मूल्यांकन न किया जाय तो मानव मानव न बनपायगा, वह पशु ही रहजायगा।

नारी— मानव क्या रहेगा या क्या है यह सब मैं नहीं जानती। पर बड़े बड़े धर्मों की स्थापना नर ने ही की है, साम्राज्यों और राष्ट्रों का निर्माण भी नर ने ही किया है यह तो इतिहास की सच्ची बात है। नारी की दुनिया बड़ी छोटी रही है।

नर— इस छोटी दुनिया को सम्हालने की जिम्मेदारी नारी ने लेली इसीलिये तो नर को बड़ी दुनिया सम्हालने का मौका मिला। फिर भी ऐसे व्यक्ति अपवाद रूप ही रहे हैं। साधारण नर और साधारण नारी, दोनों की दुनिया छोटी ही रहती है। अपवाद रूप में तो नारियाँ भी ऐसी हुई हैं जिनकी दुनिया विशाल थी।

नारी— पर नारियों की वह महत्ता पुरुषोचित कार्यों के कारण ही थी।

नर— पुरुषोचित कार्यों में भी नारी इतना विकास कर सकी यह क्या उसकी कम महत्ता है?

नारी— इस महत्ता में वास्तविक मूल्यांकन बहुत कम है। नारियों ने वीरता दिखाई है, शासन चलाये हैं, पर उनके इन

कार्य को जो विशेष महत्त्व दिया गया है वह सिर्फ इसलिये कि नारी होकर भी उसने ऐसा किया, अन्यथा पुरुषों के लिये तो वह साधारण कार्य था। इतिहास नारियों के प्रति काफी उदार रहा है।

नर— पर नारियों के साथ जितना अन्याय किया गया है उसके आगे यह उदारता पासंग बराबर भी नहीं है। यहां तक कि जिन महापुरुषों के आज गीत गाये जाते हैं वे भी नारी के साथ न्याय नहीं कर सके। रामचन्द्र जी सीता जी के प्रति न्याय नहीं कर सके। श्रीकृष्ण जी ने स्त्रियों को धन समझकर हजारों की संख्या में बटोरा. म. बुद्ध और म. महावीर तो पत्नियों के साथ एक तरह का विश्वासघात करके भी नारीनिन्दा करते रहे और उसका स्थान नीचा रक्खा।

नारी— इसमें उनका कोई अपराध नहीं। समाज धीरे धीरे पशुता का त्याग करता आरहा है। बन्दर आदि में यूथपति नर ही होता है। बन्दर ही विकसित होते होते मनुष्य बना है इसलिये बन्दर-समाज के कुछ दोष मनुष्य में रहे हैं। उसकेलिये महापुरुष क्या करते? एक साथ सारी बुराइयों पर, अन्यायों पर, हमला न कर सके इसमें उनका कुछ दोष नहीं। महापुरुषों का विकास भी धीरे धीरे होताजाता है। पर मैं तो इसी बात से कृतज्ञता से भर जाती हूं कि नारी के साथ न्याय करने की आवाज उठाने वाले, उसे समानता का दरजा देनेवाले भी पुरुष हैं।

नर— पर यह उनका नारी समाज के ऊपर कोई उपकार नहीं है किन्तु पुरुषों ने जो आज तक नारी के साथ अन्याय किया है उसका प्रायश्चित्त मात्र है, एक तरह से भूलसुधार है।

नारी— पर प्रायश्चित्त सब से बड़ा तप है। और बिना किसी दबाव के भूल सुधार करना बड़ी भारी सेवा है।

नर- खैर, महामानवों की बात दूसरी है। होसकता है कि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में महामानव कुछ अधिक हुए हों

कदाचित् महामानवता की मात्रा भी उनमें कुछ अधिक रही हो, पर इसे वैयक्तिक विशेषता ही समझना चाहिये। पर जहां तक साधारण नर और साधारण नारी का सवाल है नारी ही समाज की सुख शान्ति का मुख्याधार है।

नारी- पर नर के बिना नारी कुछ नहीं कर सकती।

नर- और नारी के बिना नर भी कुछ नहीं कर सकता।

नारी- यह भी ठीक कहा। इसलिये सत्यसमाज का यह गीत ही सत्य है—

नर आधा मानव; आधा मानव नारी।
दोनों मिलकर पूरे मानव अवतारी॥

नर- यह पूर्ण सत्य है। इसमें न्याय का 'शिवं' ही नहीं है 'प्रेम' का 'सुन्दरम्' भी है। इसमें ज्ञान का चित् ही नहीं है प्रेम का आनन्द भी है।

नारी- सच है। नर नारी दोनों एक दूसरे का सूल्य समझकर ही दुनिया को सच्चिदानन्द का धाम बनासकते हैं।

नर- और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का लीलानिकेतन भी।

७ चन्नी ११९५८ इ. सं.　　ता. ९-१२-५८

१९- विमाता

नरक

विमाता- अरे ओ पोट्टा, अभी से पढ़ने को बैठ गया? यह बाकी काम कौन करेगा?

पुत्र- तुम करो और कौन करेगा?

विमाता— मैं काम करूंगी? और तू बैठा बैठा हराम का खायगा?

पुत्र- मैं किसी के बाप की कमाई नहीं खाता हूं, अपने बाप की कमाई खाता हूँ?

विमाता- बड़ा बापवाला आया है ! देखती हूँ तेरा बाप कैसे खाने देता है ? यदि काम न करेगा तो चौके में घुसने न दूँगी। (बड़बड़ाती हुई) खुद तो मर गई पर मेरी छाती के लिये यह बोझ छोड़गई !

पुत्र- तुम्हें तो राज करने को बना बनाया घर मिलगया ! मेरी मां ने जोड़ जोड़ कर घर बसाया और तुमने आकर सब लूट लिया !

विमाता- तो अपनी मां से कहा क्यों नहीं कि छाती से बांधकर सारा घर लेजाती, और तुझे भी लेजाती ?

पुत्र- देखेंगे, जब तुम मरोगी तो अपने कितने बेटों को साथ लिये जाती हो ?

विमाता- (दूसरे कमरे में बैठे हुए पति से) सुन रहे हो ? तुम्हारा लाड़ला कैसी कैसी बातें करता है। इसके रहते मैं इस घर में एक दिन भी नहीं रह सकती।

पति- (प्रवेशकर लड़के से) क्यों रे ! ऐसा बकवाद क्यों करता है ? कान पकड़कर निकाल दूँगा।

पुत्र- निकाल दो ! कान पकड़कर निकाल दो ! जब मेरी मां मर गई तब मेरे लिये रहा कौन ?

(रोने लगता है)

पति- (खिन्न होकर पत्नी से) तुम भी सबेरे से जरा जरासी बात में झगड़ा मोल ले बैठती हो।

पत्नी- मैं झगड़ा ले बैठती हूँ ? सबेरे से काम में थोड़ी बहुत मदद करने से तुम्हारा लाड़ला घिस जायगा ? जरा काम करने को कहा तो सौ गालियाँ सुनादीं। और तुमसे कहा तो तुम भी मुझे ही डपटने आगये। अब बाप बेटे मिलकर मेरी जान ही लेलो। इस फूटे भाग्य में इस नरक में ही आना बदा था। (सिर पीटती हुई दूसरे कमरे में चली जाती है।)

(पति ओंठ चबाता रहजाता है पर बोल कुछ नहीं पाता, आंखों में आंसू भर आते हैं)

स्वर्ग

विमाता- बेटा ! झाड़ने की जल्दी क्या है ? मैं अभी झाड़ लेती हूं । तू तो अपना काम कर

बेटा- पढ़ते पढ़ते थक गया हूं मां, इसलिये सोचा कि जरा झाड़ू ही लगालूं ।

विमाता- बातें बनाना तो कोई तुझसे सीख ले । क्या जीजी के समय में इसी तरह पढ़ने पढते थक जाता था ।

बेटा- मां ने ही तो इसप्रकार थकना सिखाया था मां ! मां कहती थी कि एक काम करते करते देर होजाय तो दूसरा काम करना चाहिये जिससे पहिले काम की थकावट दूर होजाती है ।

विमाता— जीजी क्या थीं, देवी थीं । तभी तो तुझ सरीखा देवपुत्र मेरे लिये वरदान के रूप में छोड़ गईं ।

बेटा— पर पहिली मां की तरह तुम भी न चली जाना मां !

विमाता— मैं क्यों चली जाऊंगी मेरे लाल ?

बेटा— मुझे अपने अभाग्य का डर लगा रहता है मां ! पहिली मां मुझसे खूब प्यार करती थी इसलिये चलीगई । अब तुम उससे भी ज्यादा प्यार करती हो इसलिये डर लगता है कि तुम भी न चली जाओ ।

विमाता- (दूसरे कमरे में बैठे हुए पति को लक्ष्य करके जरा जोर से) सुनते हो ! यह मेरा बेटा मुझसे क्या कह रहा है ?

पति— (प्रवेश कर) क्या कह रहा है ?

विमाता— कहता है कि 'पहिली मां मुझसे प्यार करती थी इसलिये वह चलीगई, अब तुम उससे भी ज्यादा प्यार करती हो तो तुम भी न चली जाना ।

पति—(हँसकर) ठीक तो कहता है; तुम इतना प्यार क्यों करती हो ?

विमाता- क्यों न करूं ? जीजी को तो इसने गर्भ में रहते समय, पैदा होते समय, तथा शैशव में भी काफी कष्ट दिया था, तब भी जीजी इतना प्यार करती थीं। मुझे तो इसने कोई कष्ट दिया ही नहीं। मुझे तो बिना किसी कष्ट के तैयार बेटा मिलगया; तब जीजी से ज्यादा प्यार क्यों न करूं ?

पति- धन्य है तुम्हारे इस गणित को। ऐसा गणित तो बृहस्पति को भी नहीं आता होगा।

विमाता— बृहस्पति जी कोई मां थोड़े ही हैं जो उन्हें मां का गणित आजायगा।

पति—(पुत्र से) तू मां की तरफ से निश्चिन्त रह बेटा; तेरी मां तुझसे इतना अधिक प्यार करती है कि तेरे पीछे वह यमराज को भी धक्का मारकर भगा देगी।

बेटा — ओं ! मेरी प्यारी मां। (मांसे चिपट जाता है।)

विमाता--मेरे प्यारे बेटे ! (बेटे के सिरपर प्यारसे हाथ फेरने लगती है। पति हर्षके आंसू भरे हुए दोनों को देखता रहता है।)

४ चिंगा ११९५८ इ सं ८-११-५८

२०- गिलास फूटा

नरक

बहू कांच का गिलास साफ कर रही थी कि उसके हाथ से सटककर वह गिर पड़ा और फूटगया। आवाज सुनकर सासू दौड़ी आई। गिलास के टुकड़े देखकर चिल्लाई—आखिर तुझसे गिलास फोड़े बिना रहा न गया।

बहू ने रोष में कहा— तो क्या मैंने जानबूझकर फोड़ दिया ? हाथ में से सटकगया तो मैं क्या करूं ?

सासू— कैसे सटक गया ? क्या उसके हाथपैर थे जो जबर्दस्ती भागगया ? अब कौन भर देगा यह ? क्या तेरा बाप भर देगा ?

बहू— बाप क्यों भर देगा ? दिनरात बैल की तरह जुतूं इस घर में, और चीजें भरने आयगा मेरा बाप ?

सासू— तभी तो ! बाप की कमाई होती तो सम्हालती. यह तो पति की कमाई है, इसकी तुझे क्या चिन्ता ?

बहू— हां ! तुम्हीं को तो है सारी चिन्ता ?

सासू— तुझे चिन्ता होती तो जरासा गिलास क्या न सम्हलता ? इतना तो खाती है, तब क्या शरीर में गिलास सम्हालने लायक भी ताकत नहीं ? आखिर कहां जाता है इतना खाना ?

बहू— कहां जाता है ? जहां सब का जाता है वहीं मेरा जाता है । अधपेट रहती हूँ तब भी तुम्हारी आंखों में रूखीसूखी रोटियाँ खटकती रहती हैं । मैं तो चाहती हूँ कि बिलकुल न खाऊं, पर इस पेट पापी को क्या करूं ?

यह कहकर बहू ने अपने पेटपर मुक्का सा मार लिया और रोती हुई दूसरे कमरे में चली गई । सास का दिमाग भी आसमान में चढ़ता गया और बहू का रोना और बड़बड़ाना भी पीछे न रहा। समय पर रोटी भी न बन सकी । पति को भूखे ही नौकरी पर जाना पड़ा । जाते जाते वह भी बड़बड़ाता गया—सब का पेट भरने के लिये खून पसीना एक करता हूँ पर दो दो जनी होने पर भी मुझे ही खाने नहीं मिलता । न जाने भगवान किन पापों का दंड देरहा है । कैसे इस जिन्दगी से पिंड छूटेगा !

सब के दिल में आग सी लगी थी । आंसू आग को बुझाने का काम नहीं, पेट्रोल का काम कर रहे थे । नरक का तांडव होरहा था ।

स्वर्ग

बहू के हाथ से गिलास फूटते ही सासू आई और प्रेमल स्वर में बोली—जरा सम्हलकर रहना बेटी, कांच का कोई टुकड़ा चुभ न जाय ? कांच का छोटा से छोटा टुकड़ा भी चमड़ा काटकर खून निकाल देता है।

बहू—कांच तो नहीं चुभा मां, पर न जाने हाथ से गिलास कैसे सटक गया ? छः आने के गिलास को छह दिन भी तो नहीं हुए।

सासू—छह दिन हों या छह सौ दिन। कांच की चीजें तो नई पुरानी एकसी होती हैं। सैकड़ों चीजें हाथ में से गुजरती रहती हैं कभी एकाध सटक ही जाती है। उसपर वश क्या है ? मुझे तो तुझसे ज्यादा दिनों से काम करने की आदत है पर मेरे हाथ से भी कभी कभी चीज सटक जाती है।

बहू—पर तुम्हारा तो बुढ़ापा है मां ! शिथिल हाथों से कोई चीज सटक जाय तो यह स्वाभाविक है, पर मैं तो अभी जवान हूं।

सासूने विनोद करते हुए कहा-हुँः! अभी जवान भी होगई ! दूध के दांत टूटे जुम्मा जुम्मा सात दिन भी नहीं हुए। घर गृहस्थी के काम तो धीरे धीरे आदत पड़ने पर ही ठीक होते हैं। एक दिन में ही सब अनुभव नहीं होजाता। ठहर ! कांच के टुकड़े हाथ से न उठा। एक खर्डे पर झाडू से लेले। कांच के छोटे से छोटे टुकड़े भी बड़े खराब होते हैं।

यह कहकर सास खर्डा और झाडू उठा लाई। दोनों ने मिलकर कांच के सब टुकड़े उठाकर एक तरफ सम्हालकर रख दिये जिससे ऐसी जगह डलवाये जासकें जहां किसी का पैर न पड़े।

सासू मन ही मन कह रही थी-मेरी बहू बड़ी भली है,

उसे जरा भी नुकसान सहन नहीं होता। बहू मन ही मन कह रही थी मेरी सास जो मां से भी बढ़कर हैं। चीज के नुकसान की उन्हें चिन्ता नहीं होती; नुकसान करनेवाले हाथों की चिन्ता होती है।

घर में स्वर्ग का नृत्य होरहा था।

३ धनी ११९५५ इ. सं.　　१०-१०-५५

२१- बुढ़िया

नरक

बुढ़िया— बहू, तू चार बच्चों की मां तो होगई, पर ढोर की ढोर ही बनी रही।

बहू— अभी क्या ढोरपन दिखाया मैंने ?

बुढ़िया— यह ढोरपन नहीं तो क्या है ? कहने को झाड़ू लगाली है पर उस कोने में कचरा है ही, कपड़े धोलिये हैं पर कपड़ों में दाग लगे हुए हैं। मेरी साड़ी तो ऐसी है मानों महीनों से न धुली हो। बच्चों की नाक बहरही है, रसोई घर भिनभिना रहा है। दुपहर होने को आया पर अभी तक रोटी का ठिकाना नहीं है। न कोई काम ढंग का होता है, न समय पर होता है। और ढोरपन किसे कहते हैं ?

बहू— मुझे पलंग पर पड़े पड़े केवल बड़बड़ तो करना नहीं है, काम करना है। सो दो हाथों से जितना बनता है करती हूं। चार चार बच्चों को सम्हालूं, कि रोटी बनाऊं ? कि कपड़े धोऊं ? कि सफाई करूं ? कि तुम्हारी गुलामी करूं ? क्या क्या करूं ?

बुढ़िया—अपने घर का काम तू न करेगी तो कौन करेगा ? अकेले तेरे ही घर तो काम नहीं है, सभी के घर है ? मैंने भी तो तेरी उमर में काम किया है पर ऐसा ढोरपन तो नहीं दिखाया।

बहू— ढोंगपन दिखाया कि नहीं दिखाया, मैं तो देखने थी नहीं ? अपने मुँह अपनी तारीफ करने में क्या लगता है ? मैं तो जब से आई हूं तब से खां खां और बड़बड़ के सिवाय कुछ काम तुम्हारा दिखा नहीं है।

बुढ़िया— बीमारी के मारे उठ बैठ नहीं सकती तो क्या करूं ? खांसी पर मेरा क्या वश है जो तू ऐसे टांचने मारती है।

बहू—खांसीपर वश नहीं है तो बड़बड़ पर तो वश है ! जब तुमसे कुछ काम नहीं होता, तब चुप तो रह सकती हो। बीमारी दुनिया को होती है पर इस तरह अकेली बहू पर सारा बोझ डालकर बड़बड़ करने की दुष्टता कोई नहीं करता ? जलेपर नमक कोई नहीं छिड़कता।

बुढ़िया— मैं दुष्टता करती हूं ? जलेपर नमक छिड़कती हूँ ? हे भगवान, कितने बार कहती हूं कि मुझे उठाले ! भगवान भी रूठा है, वह मौत भी नहीं भेजता। मैं बीमार हूँ, सो मेरी कोई इज्जत नहीं। सीख की दो बातें भी नहीं बोल सकती।

बहू— और कितना बोलोगी ? दिनभर तो बड़बड़ाती रहती हो। और ऊपर से यह बीमारी की दुहाई देती रहती हो। बीमार हूँ ! बीमार हूं ! बीमार हूं ! बीमार हो तो हमपर बड़ा अहसान करती हो ? मानों हमने बीमार कर दिया हो। बीमार हो तब तो नाक में दम कर दिया है, अच्छी होती तो जान ही ले लेतीं ?

बुढ़िया— हां ! कसाई हूं न ?

बहू— कसाई से बढ़कर। कसाई तो एक बार में प्राण लेलेता है, दिनरात जान नहीं लेता रहता। यहां तो घड़ी घड़ी पर मौत है।

बुढ़िया- (दोनों हाथों से सिर पीटकर) हे भगवान, किसी को घड़ी घड़ी की मौत के लिये क्यों जिला रक्खा है मुझे ?

हाय ! कोई विष भी तो नहीं ला देता जिसे खाकर सदा के लिये सो रहूँ। किसी दिन तू ही विष दे दे बहू ! जिससे तेरे सिर का बोझ उतर जाय।

बहू—(अपना सिर पीटकर) तुम्हें विष खाने की क्या जरूरत है ? विष तो मुझे खाना है जिससे इस नरक से छुटकारा मिले। तुम्हें क्या करना है ? पलंग पर पड़े पड़े जिन्दगी काटना है, उसके लिये मरने की क्या जरूरत ?

(दोनों ही आंसू बहाती हुई बड़बड़ाती रहती हैं।)

स्वर्ग

शाकभाजी मुझे देदे बेटी, धीरे धीरे बनादूंगी। तू क्या क्या करेगी ? दिनभर तो काम में जुती रहती है।

बहू- मैं तो हट्टी कट्टी और जवान हूँ मां, दिन भर काम करूं तो भी क्या ? पर तुमसे तो उठने बैठते भी नहीं बनता फिर भी तुम्हारे हाथ नहीं रुकते। बैठे बैठे कभी शाक बनाओगी, कभी बच्चों की सफाई करोगी और सजाओगी, कभी बच्चों को कहानियाँ सुनाओगी। घर के काम का आधा बोझ तो तुम यों ही उठा लेती हो।

बुढ़िया—यह भी कोई काम है बेटी ! यह तो किसी तरह अपना दिल बहलाना है। नहीं तो पड़े पड़े दिन कैसे कटे ? कामतो तेरा है। मैं तो देखकर दंग रह जाती हूँ। सात आदमी की रसोई है; बर्तन हैं, कपड़े हैं; झाड़झूड़ साफसफाई है; मेरी सेवा है। पर तू सब काम इस तरह कर लेती है कि आवाज भी नहीं होती। मेरे तो एक ही बेटा था पर मैं घबरा जाती थी कि उसे सम्हालूं कि काम करूं ? पर तू चार चार बच्चे और बीमार बुढ़िया को भी इस तरह सम्हालती हुई सारा काम कर लेती है कि कुछ पता ही नहीं लगता।

बहू—यह सब तुम्हारा आशीर्वाद है मां ! मेरे लिये तो

तुम हो, पर तुम्हारे लिये तो कोई नहीं था। बड़ी मां का स्वर्गवास जल्दी होजाने से तुम अकेली पर ही सारा बोझ आपड़ा था। पर तुम्हीं थीं जो सारा बोझ अकेली ही उठालिया था। तुम्हारी बराबरी तो मैं क्या कर सकूंगी मां।

बुढ़िया—उससमय बोझ ही कितना सा था बेटी, सिर्फ ढाई आदमी का काम था। फिर भी मैं घबरा जाती थी। तू तो न जाने किस धातु की बनी है कि कितना भो काम हो, काम से घबराती ही नहीं।

बहू— घबराने का बोझ तो तुमने उठालिया है मां, मुझे तो चिन्ता को जगह ही नहीं रक्खी ! तुम बैठे बैठे न जाने कितना काम कर लेती हो और करा लेती हो। तुमने तो छोटे छोटे बच्चों को भी आदमी बनादिया है। बड़े बच्चे से झाडू लगवादेती हो। कहीं कचरा पड़ा रहजाय तो मुझे पता ही नहीं लगता कि तुमने कब फिकवा दिया। बच्चों को ऐसे सांचे में ढाल दिया है कि कोई गन्दा रहता ही नहीं; कपड़ों में भी दाग लगने नहीं पाता। मेरे पास तो वे खाना मांगने के सिवाय आते ही नहीं ! वे मुझे अपनी मां नहीं धाय समझते हैं; उन्हें सम्हालने का सारा बोझ तो तुम्हीं ने उठा लिया है।

बुढ़िया— बोझ क्या उठा लिया है बेटी, बच्चे तो मेरे खिलौने हैं। बच्चों को खिलौनों की जितनी जरूरत होती है बूढ़ों को उससे ज्यादा होती है। नहीं तो उन्हें जीना दूभर होजाय।

बहू—तुम्हारा तो एक खिलौना मैं भी हूं मां ! कभी कभी तो तुम मुझे भी गुड़िया सरीखी सजाने लगती हो।

बुढ़िया—जी तो ऐसा ही चाहता है कि तुझे हर दिन गुड़िया सरीखी सजाया करूं और बेटी की तरह गोद में लेकर खिलाया करूं। पर क्या करूं, शरीर साथ नहीं देता। न घर का काम तुझे फुरसत देता है।

बहू-- तुम्हारे इसी आशीर्वाद से तो मुझे घर का काम कामसा नहीं मालूम होता। ऐसा लगता है कि मैं तो तुम्हारी बच्ची हूं और रोटी पानी का खेल खेलरही हूँ।

बुढ़िया- सचमुच तू मेरी बच्ची है, पर है स्वर्ग की देवी, न जाने किसके शाप से जमीन पर उतर आई है।

बहू—किसी के शाप से नहीं आई हूं मां, पुण्य के उदय से आई हूँ।

बुढ़िया- कैसे भी आई हो, पर तूने इस घर को स्वर्ग बनादिया है।

बहू-तुम्हारे आशीर्वाद से अपना घर स्वर्ग ही है मां, पर मैं तो इस स्वर्ग भवन की दीवार ही हूँ, छप्पर तो तुम्हीं हो। छप्पर न हो तो दीवारें किस कामकी

बुढ़िया—और दीवारें न हो तो छप्पर किसके सहारे टिके?

(यह कहकर बहू के सिर पर प्रेम से हाथ फेरने लगती है और बार बार सिर चूमती है।)

१६ जिन्नी ११९५६ इ. सं. १३ । ३ । ५८

२२- अनेक कार्य

नरक

सासू— बहू, मैं कब से कह रही हूं कि जरा यहां झाड़ू लगाकर थाली लगादे लड़का आता ही होगा। पर तू मेरी बात सुनती ही नहीं।

बहू— सब सुनती हूं। पर करूं क्या क्या? हाथ तो दो ही हैं।

सासू— तो चार हाथ का काम कौन बतारहा है तुझे? झाड़ू देना और थाली लगाना दो हाथ का ही तो काम है।

बहू— दो हाथ तो बर्तन मलने में लगे हैं। कुछ पड़ीपड़ी आराम तो कर नहीं रही हूं। काम ही तो कर रही हूं।

सासू— पर जो काम पहिले करने का है वह पहिले कर लेना चाहिये। जो बाद में होसकता है वह बाद में करना चाहिये।

बहू— लेकिन जो काम लेलिया उसे तो पूरा करलूं?

सासू— पर वह काम दिनभर न होगा तो तू मौके का कोई काम न करेगी? सब काम के लिये मुझे ही मरना पड़ेगा।

बहू— तुम क्यों मरोगी? मरने की बारी तो मेरी है इसलिये मैं ही मरूंगी?

सासू- दिनरात तू मेरे मरने की ही तो बाट देखती रहती है कि यह बुढ़िया कब मरे, जिससे पैर पसारे सोती रहूँ। पर जब तक मैं जिन्दी हूं तभी तक ये सपने हैं। मेरे मरने पर आटे दाल का भाव मालूम होजायगा।

बहू— तुम्हारे मरने की बात तो मैंने कही नहीं है, मैंने तो अपने मरने की बात कही है।

सासू- पर जिस तरह से कही है उसका मतलब समझती हूँ। कोई भी काम करने को कहो तो काम तो न होगा, बस मरने की नौबत आजायगी। आखिर वह मुझे ही करना पड़ेगा।

बहू— आग लगे इस भाग्यपर! दिनरात काम करो! पर कहलायगा यही कि कुछ काम नहीं किया।

(क्रोध में बर्तन पटक देती है और बिना हाथ धोये ही थाली लगाने लगती है।

सासू — रहने दे! रहने दे! हाथों की मिट्टी साफ थाली को क्यों लगारही है? नहीं करना है तो मत कर!, पर उलटा बिगाड़ क्यों कर रही है?

बहू- (थाली पटककर बड़बड़ाती हुई) कहां लेजाऊं इस फूटे भाग्य को, किसी तरह भी गत नहीं। करो तो मौत, न करो तो मौत।

(बड़बड़ाती हुई चली जाती है। बर्तन भी अधमले पड़े रहते हैं; थाली वगैरह भी नहीं लगाती। सासू यह सब देखकर सिर पीट लेती है और आंसू बहाती हुई बैठ जाती है।)

स्वर्ग

बहू— मां ! तुम क्यों उठ रही हो ? मैं अभी लगाती हूं थाली।

सासू— पर तू तो बर्तन मलरही है बेटी !

बहू— बर्तन पीछे होते रहेंगे; उनको जल्दी क्या है ? जरूरी काम तो पहिले करलूं।

सासू— पर दो ही तो हाथ है ? उनसे तू क्या क्या करेगी ?

(सासू उठकर थाली लगाने आजाती है और बहू भी हाथ धोकर सासू के हाथ की थाली लेलेती है।)

बहू— एक साथ सभी काम थोड़े ही करना हैं मां ! बर्तन छोड़कर थाली लगाने लगी; इसमें चार हाथ का काम कहां है, दो हाथ का ही काम तो रहा।

सासू— तू तो खूब पढ़ी लिखी है, तुझसे तर्क में तो जीत नहीं सकती। पर बार बार काम छोड़कर अनेक कामों को दौड़ने में तकलीफ तो होती है।

बहू— इसमें क्या तकलीफ है मां। बर्तन मलना छोड़कर हाथ धोने में क्या मिहनत बढ़ी ? उठकर दो कदम चलने में भी क्या मिहनत बढ़ी ? और अब थाली लगाने में क्या मिहनत बढ़ी ?

सासू— मिहनत तो नहीं बढ़ी, पर मैं अकेली क्या क्या करूं, इस विचार से स्त्रियाँ घबराजाती हैं।

बहू— इस विचार से नहीं घबराती मां, ईर्ष्या से घबराती हैं। घर में जब कोई दूसरा होता है तब घबराती हैं। सोचती हैं मैं ही क्यों करूं ? इसलिये एक काम लेकर रोंथाती रहती हैं। अकेली होती हैं तो सब काम समय पर ढंग से करलेती हैं।

सासू— बिलकुल ठीक कहा बेटी तूने। सचमुच तू बड़ी पंडिता है। है तो बच्ची, पर अनुभव की बातों में बड़ो बूढ़ों को भी मात करती है। सच्ची विद्या पढ़ी तूने।

बहू— यह सच्ची विद्या स्कूल कालेज में नहीं पढ़ी मां, न किताबों में पढ़ी। यह सब तुम्हारे चरणों में रहने से पढ़ा है। तुम्हारा एक एक काम और एक व्यवहार मैं देखती हूं एक एक बात ध्यान में रखती हूं, तुम्हारे इसी ज्ञान भंडार से मैं कुछ टुकड़े बटोरती रहती हूँ।

(हर्षातिरेक से सासू की आंखों में आंसू आजाते हैं। वह हर्षाश्रु पोंछ लेती है।)

सासू— धन्य है बेटी तुझे। पर अब तो सब काम होगया। बर्तनों की जल्दी नहीं हैं। सब पीछे मललिये जायँगे। जब तक लड़का आता है तब तक मेरे पास आकर बैठ जा।

(सासू खाटपर बैठी थी। बहू खाट के नीचे आकर बैठ जाती है।)

सासू— यहीं ऊपर मेरी बगल में आजा बेटी!

बहू— नहीं मां, तुम्हारे चरणों में बैठने में जो शान्ति है, वह तुम्हारी बराबरी करने में नहीं।

सासू— बहुत भाग्यवान हूं बेटी! पहिले मुझे रंज था कि मेरे एक बेटी न हुई। पर बेटी तो सदा पास न रहती; लेकिन भाग्य से मैंने तुझे पालिया। जो बहू भी है, और जिन्दगीभर पास रहनेवाली बेटी भी है।

(हर्ष और लज्जा से बहू ने सास की गोद में सिर छिपा लिया। सासू प्रेम से बहू के सिरपर और पीठपर हाथ फेरने लगी।

१ अंका ११९५८ इ. सं. २६-३-५८

२३- लज्जा विनय

नरक

(सासू एक पड़ौसिन से बात कर रही है। बहू बगल के कमरे में अपना शृंगार कर रही है।)

सासू— आजकल की बहुओं की बात न पूछो बहिन,

लाज शरम तो सब धोडाली है। किसी का कोई विनय नहीं, संकोच नहीं।

पड़ौसिन— क्या बताऊं बहिन, घूंघट तो वे जानती ही नहीं, ससुर या जेठ के सामने तक सिर उघाड़े चली आती हैं। ऐसी बेशर्मी तो कभी नहीं देखी।

सासू— सारा दिन शृंगार करने में निकल जाता है। जब देखो तब मुँहपर चूनासा पोता करती है और मलाई सी मला करती है।

पड़ौसिन— ऐसी बनक ठनक और ऐसी बेशरमी तो वेश्याओं में भी नहीं देखी जाती। आजकल की बहुएँ न जाने किस किसको रिझाने के लिये यह सब शृंगार किया करती हैं।

(आवेश में बहू का प्रवेश)

बहू— [क्रोध से] जी हां! ससुर को रिझाना है मुझे, और जेठ को रिझाना है मुझे, और तो कोई घर में आदमी है नहीं ?

सासू— और कोई है तो उसे रिझाया कर; पर साससुर की मर्यादा तो रखना चाहिये।

बहू— किसकी क्या मर्यादा तोड़ दी मैंने ? जो बाप की जगह हैं उनसे क्यों घूंघट करूं ? पुरानी औरतों का यह ढोंग मुझे नहीं आता कि बापों से तो घूंघट किया जाय और बिना जानपहिचान के गुंडों को चंदुआ दिखाया जाय।

सासू— बड़ों बूढ़ों के बारे में ऐसी बात करते तुझे शरम नहीं आती ?

बहू— जब तुम्हें बहूबेटियों को वेश्या बनाते शरम नहीं आती तब वेश्या के समान बहू बेटियों को क्यों शरम आयगी ?

सासू— क्या झूठ कहती हूं ? ऐसा शृंगार भले घरों में कौन करता है ? और सास ससुर की मर्याद कौन तोड़ता है ?

बहू— ऐसा श्रृंगार न सही दूसरे ढंग का श्रृंगार सही; श्रृंगार तो सभी औरतें करती रही हैं। क्या पुरानी औरतें महावर नहीं लगातीं ? हल्दी नहीं पोततीं ? पटिया नहीं पाड़तीं ? पुराने जमाने में जो चीजें मिल सकती थीं पुरानी औरतें उनसे श्रृंगार करती थीं। आज चीजें बदलगईं तो उनसे श्रृंगार होता है, इसमें वेश्यापन कहां घुसगया ?

सासू- कितनी ढीट है तू! बड़े बूढ़ों की मान मर्यादा का तनिक भी विचार नहीं! इसी दिन के लिये लड़के को पालपोसकर बड़ा किया था ? इसी दिन के लिये बड़े उछाव से शादी की थी ? बात तो मेरी मानती नहीं, और फटाफट जबाब दिये जारही है। पर यह मुझे नहीं सुहाता। मैं तो ऐसी बहू का मुँह भी नहीं देखना चाहती।

बहू— आग लगे इस मुँह में और आग लगे इस श्रृंगार में। श्रृंगार मुझे क्या चाटना है ?

(बहू क्रोध में पाउडर की डब्बी, स्नो की शीशी, सुगंधित तेल की बोतल, दर्पण आदि सब उठाकर जमीन पर फेंकने लगती है।)

सासू चिल्लाकर कहती है—आग लगादे घर में ! नाश करदे घर का ! किसी को जीता न छोड़ कुलच्छनी !

(सासू चिल्लाती जाती है और आंसू भी बहाती जाती है। पड़ौसिन भी बड़बड़ाती है। इधर दूसरे कमरे में बहू भी बड़बड़ाती है। अपने भाग्य फूटने का, जिन्दगी बर्बाद होने का, नरक में पड़ने का रोना रोती है।)

स्वर्ग

सासू— (पड़ौसिन से) जब से घर में बहू आई है बहिन, मेरे सिर का सारा बोझ उतर गया। काम की जगह बहू है और प्रेम की जगह बेटी है।

पड़ौसिन—तुम सचमुच भाग्यशाली हो बहिन ! नहीं तो आजकल की बहुएँ किसी को पूछती भी नहीं हैं। अपने बनाव ठनाव में लगी रहती हैं। बड़े बूढ़ों की मानमर्यादा का तनिक भी विचार नहीं करतीं। और काम काज से भी जी चुराती हैं।

सासू—पर मेरी बहू तो सभी बातें ढंग से करती है। मेरे हाथ डालने के पहिले हर काम में हाथ डाल देती है। मेरे हाथ लगाने की कभी बाट नहीं देखती। घूंघट वगैरह तो नहीं करती पर उसकी आंखों में ही ऐसी विनय है कि क्या घूंघट-वालियों में होगी। शृंगार या बनाव ठनाव को बुरा नहीं समझती पर समयपर मितमाफक का करती है, वह भी बार बार कहने पर।

पड़ौसिन—यह बहुत अच्छा है बहिन ! घूंघट वगैरह में क्या रक्खा है ? यह सब तो ढोंग है। राधा बहिन की बहू घूंघट तो सदा किये रहती है पर घूंघट के भीतर से ही ऐसे बोल कुबोल बोलती है कि तीर से लगते हैं। ऐसा घूंघट किस काम का ?

सासू—पहिले दिन इसने घूंघट किया था। पर मैंने ही मना कर दिया। कहा—मेरे लिये तो बहू और बेटी में कोई फर्क नहीं है। मैं तो तेरी मां हूं और तेरे ससुर जी तेरे पिता हैं। मां बाप के साथ कैसा परदा ?

पड़ौसिन—बिलकुल सच कहा तुमने। बेटी दूसरे घर में जानेवाली होती है इसलिये अपने ही घर में वह मिहमान के समान होने से किसी काम की पूरी जिम्मेदारी नहीं उठाती, जब कि बहू मिहमान होकर भी इसी घर में रहनेवाली होन से काम की पूरी जिम्मेदारी उठाती है, इसके सिवाय बहू और बेटी में फर्क ही क्या है ?

सासू—तुमने पते की बात कही बहिन ! मेरी बहू काम की जगह बहू है और प्यार की जगह बेटी है। और सूरत तो उसकी ऐसी भोलीभाली और प्यारी है कि ऐसा लगता है कि उसे

गोद में लेकर खिलाया करूं? लड़का आजकल के श्रृंगार की बहुत सी चीजें लाया था, पर वह संकोच के मारे काम में ही नहीं लेती था। तब मैंने ही कहा कि उन्हें काम में लिया कर बेटी, साज श्रृंगार के ये ही दिन हैं, इसमें शरमाना क्या?

पड़ौसिन— इन लोगों के भाग्य से नई नई चीजें मिल-रही हैं, तो क्यों नहीं काम में लेना चाहिये। हम लोगों के जमाने में ये चीजें नहीं थीं, तो क्या करतीं? फिर भी जो चीजें मिलती थीं उन्हें काममें लेने में कब चूकतीं थीं?

सासू— बहुत ठीक बात कही बहिन तुमने। इस उम्र में सभी को लालसा होती है। पर मेरी बहू इतनी मर्यादाशील है कि सामने कभी साज श्रृंगार न करेगी। और न इसके कारण किसी काम में देर होने देगी। समयपर मितमाफक श्रृंगार करेगी, स्वच्छता सफाई आदि का पूरा ध्यान रक्खेगी, आमदनी का विचार करके खर्च करेगी, अपनी तरफ से कभी कोई मांग पेश नहीं करेगी और बात ऐसी मिठास और कोमलता से करेगी मानों माखन मिश्री घोलदी हो।

पड़ौसिन— धन्य है तुम्हें और तुम्हारी बहू को। तुम दोनों ही भाग्यवान हो। पर इस समय कहां है तुम्हारी बहू?

सासू— रसोईघर में कुछ काम कर रही होगी? जिस दिन से आई है उसी दिन से सारा घर सिर पर लेलिया है। बुलाती हूं अभी। ओ इन्दू! इधर तो आ बेटी!

(बहू आई। उसने पड़ौसिन के पैर छुए, फिर सासू के पैर छुए और नीची नजर करके बैठगई।)

पड़ौसिन— तुमने तो चांद का टुकड़ा जमीनपर उतार लिया बहिन!

सासू— मुझे भी ऐसा ही लगता है। कहते हैं चांद से अमृत झरता है। चांद में कैसा अमृत भरा है मालूम नहीं, पर

मेरी बहू में तो अमृत ही अमृत भरा है।

(लज्जा के कारण बहू का सिर और झुक जाता है)

पड़ौसिन— शरमाती क्यों है बेटी ? मैं तो तेरी चाची हूँ ! मुझे चाची मानेगी कि नहीं ?

बहू- अपने भाग्य को कैसे छोड़ दूँगी चाची, मैं तो ससुराल में आकर भी बेटी की बेटी ही रही, और भतीजी की भतीजी ही। घर बदलना मालूम ही नहीं हुआ।

पड़ौसिन- क्या फूल से झड़ते हैं तेरे मुँह से। तू धन्य है। तेरे माता पिता धन्य हैं। तेरी सासू धन्य है।

सासू- इसने आते ही घर को स्वर्ग सरीखा बनादिया है।

पड़ौसिन- तुम्हारे कारण यह घर स्वर्ग सा तो था ही बहिन ! पर बहू ने स्वर्ग में भी चार चांद लगादिये।

२ अंक ११९५८ इं सं.   २७-३-५६

२४- देवरानी जेठानी

नरक

जेठानी- ए रानी साहिबा, घंटे भर से बर्तन भिनभिना रहे हैं, इन्हें कौन मलेगा ?

देवरानी- जिसे मलना होगा मलेगा, मैंने बर्तन मलने का ठेका नहीं लिया है और न हम ही सारे बर्तन जूंठे कर डालते हैं।

जेठानी— लेकिन हमने भी सारी रोटियाँ नहीं खाली हैं, परन्तु मेरे गये बिना तवे पर एक भी रोटी नहीं पड़ती। रोटी भी मैं बनाऊं ? और बर्तन भी मैं मलूं ?

देवरानी— रोटी क्या तुम्हीं बनातीं हो ? शुरु से चूल्हा फूंकने तो मैं ही जाती हूं।

जेठानी- जाती होगी, पर थोड़ी बहुत उठापटक करने से ही तो रोटी नहीं बनजाती, वह तो जतनसे मुझे ही करना पड़ती है।

देवरानी— वाहरे जतन। जतन के नामपर मुझे सुबह से शाम तक नौकरानी की तरह जोत डालती हो। नौकरानी को तो छुट्टी मिलती है पर मुझे छुट्टी कहां !

जेठानी— क्या तुझे मैं दिनभर जोतती हूं और मैं कुछ नहीं करती ? बच्चा है, उसे सम्हालना पड़ता है इसलिये कुछ आगा पीछा होजाता है इसीमें तुझे दिनभर जोतना होजाता है ?

देवरानी— बच्चा है तो तुम्हारा है। बुढ़ापे में तुम्हारे काम आयगा। उसका अहसान मुझपर क्यों लादती हो ?

जेठानी— बच्चा भी तेरी आंख की किरकिरी बना हुआ है री, ऐसा करेगी तो बाँझ ही रहेगी।

देवरानी— बांझ रहूँगी तो अपने भाग्य से, तुम्हारा बच्चा न लूँगी। इसीलिये तो तुम्हारे बच्चे को हाथ नहीं लगाती। वह जब राजा बनजाये और मैं भीख मांगते आऊं तब न देना। पर अभी तो मैं इस घर में नहीं रह सकती। दिनभर लौंडी की तरह काम करूं, बांझ भी कहलाऊं और तुम बैठा बैठी हुक्म चलाती रहो और गालियाँ देती रहो, यह मुझसे सहन न होगा। भूखी रहूं तो रहूं, और बांझ रहूं तो रहूं, पर इस घर में पानी न पियूंगी।

यह कहकर देवरानी पैर पटकती हुई और आंखें पोंछती हुई शयनागार में चली गई।

जेठानी ने सिर पीटकर कहा—इसी दिन के लिये देवर की शादी की थी और इसकेलिये अपने आधे गहने बेंच डाले थे। भगवान, कोई देखे या न देखे पर तुम सब देखते हो।

यह कहकर जेठानी भी सिसकने लगी। बर्तनों पर मक्खियाँ नरक की दूतियों की तरह भिनभिनाती रहीं।

स्वर्ग

जेठानी— यह क्या करती है बहिन ? बर्तन कहीं भागे थोड़े ही जारहे हैं। जरा आधा घंटा आराम करले, फिर दोनों मल

डालेंगे।

देवरानी— पर बर्तन मलने के लिये दो ही हाथ तो लगते हैं जीजी, और मेरे पास दो हाथ हैं तब तुम्हें इतनी चिन्ता करने की क्या जरूरत है?

जेठानी— तू तो कालेज में पढ़ी है, इसलिये तेरे बराबर तर्क करना तो मुझे आता नहीं। पर इतना जानती हूँ कि चार हाथ लगजायँगे तो काम जल्दी हो जायगा।

देवरानी— न होजायगा। क्योंकि बच्चा न तुम्हें काम करने देगा न मुझे।

जेठानी – मेरे पास तो बच्चा फटकने से रहा। मैं तो सिर्फ जननेभर की मां हूं और दूध पिलाने की धाय, बाकी वह तो सदा तुझसे ही चिपटा रहता है। और तुझे भी आदत है कि पीठ पर बच्चे को लादे रहती है और आगे दोनों हाथों से काम भी करती रहती है। मुझसे तो ऐसी तपस्या नहीं होसकती।

देवरानी— जितना हो सके मैं भी उस तपस्या से बचना चाहती हूं और इसीलिये जब तक बच्चा तुम्हारे पास है तब तक बर्तनों से निबट जाना चाहती हूँ। तुम्हारे उठते ही वह मुझे कोई काम न करने देगा।

जेठानी— न करने देगा तो मैं तो हूं।

देवरानी- तो मैं क्या नहीं हूँ?

जेठानी- होने से क्या होता है? अभी तो तेरे खेलने के दिन हैं?

देवरानी-- और तुम्हारे आराम करने के दिन हैं। तुम तनिक आराम कर लो मैं तनिक खेल रही हूँ।

जेठानी-- बाहरे खेल! आखिर तू अपना हठ न छोड़ेगी।

देवरानी-- बच्चे अपना हठ नहीं छोड़ते।

जेठानी-- अच्छी बात है, न छोड़! जा रे मुन्ना अपनी चाची के पास।

यह कहकर जेठानी ने बच्चे को देवरानी की पीठ से लगाकर खड़ा कर दिया और बर्तन मलने में हाथ बटाने लगी।

जेठानी मन ही मन कह रही थी- देवरानी क्या है पेट की बेटी से बढ़कर है। कोई बेटी भी अपनी मां का इतना खयाल क्या करेगी ?

देवरानी मन ही मन कह रही थी--जेठानी क्या हैं, मां हैं। मानों मैंने इनके पेट से ही जन्म लिया हो।

दोनों के हृदयों में स्वर्ग किलोलें कर रहा था।

४ इंगा ११९५६ इ. सं. १८--७--५६

२५- विधवा

नरक

जेठानी—ए भैनी, जरा कमरे के भीतर ही रह ! नई बहू आरही है, आगे आकर अपशकुन न करदे।

विधवादेवरानी—नई बहू आरही है तो उसे मैं खा नहीं जाउंगी।

जेठानी— क्यों न खा जायगी ? जब पति को खागई तब और किसे छोड़ेगी ?

देवरानी—मैं पति को क्यों खाउंगी ? घर की लौंड़ी बनने के लिये ? अपशकुनी कहलाने के लिये ? मेरे पति को खाया है उनने जिन्हें उसका हिस्सा मारकर मोटा होना था।

जेठानी—कलमुँही, ऐसा इलजाम लगाते तुझे शरम नहीं आती ? क्या हमने तेरे पति को खाया है ?

देवरानी— जब मेरे पति को किसी ने खाया ही है तब उसी ने तो खाया होगा जिसका कुछ मतलब सिद्ध होता होगा। अपशकुनी कलमुँही कहलाने के लिये कोई अपने पति को क्यों खायगी ?

सासूने बीचमें कूदकर कहा— यह क्या बकती है री, नई बहू घर में आरही है और तू अपशकुन करने आंगनमें खड़ी है ! घड़ीभरको कमरेके भीतर रह जा न !

देवरानी— क्यों रहूं ? शादी में तो रंडियाँ तक आती हैं उनसे अपशकुन नहीं होता, पर जो शील से रहती है उससे अपशकुन होजाता है ?

जेठानी— तो तू रंडी बनजा !

देवरानी—बनजाउंगी । जब पापियों के घर में पड़ी हूं तब सब कुछ बनना पड़ेगा ।

जेठानी— यह पापियों का घर है ?

देवरानी— और किनका है ? जिस घर ने मेरा पति खालिया और जहां मुझसे रंडी बनने को कहा जारहा है वह पापियों का घर नहीं है तो किनका है ?

सासू— अब चुप रहती है कि नहीं ? नहीं तो तेरा सिर फोडूं !

देवरानी- मेरा सिर ही फोड़ दो ! मेरा सिर ही फोड़ दो ! मेरा सिन्दूर तो पहिले ही पोंछ दिया अब सिर और फोड़ दो ! मेरा पति खालिया, मेरा हिस्सा खालिया, अब सिर फोड़कर मुझे भी खाजाओ ।

यह कहकर देवरानी आंगन में गिरकर जमीन पर सिर पटकने लगी । और चिल्ला चिल्लाकर कहने लगी- मेरा पति खालिया अब मुझे भी खाजाओ !

वर वधू दरवाजे पर आगये । पर वहां उनका स्वागत करने को कोई न था; भीतर आंगन में जो नरक का तांडव होरहा था सब उसीमें फँसे थे ।

स्वर्ग

जेठानी— बहिन ! घर के भीतर इस कोने में बैठकर क्या कररही है ? लड़का बहू आरहे हैं । क्या उनका स्वागत न करेगी ?

मुहल्लेभर की स्त्रियाँ इकट्ठी होगईं, और तू कोने में बैठी है !

देवरानी- मैं बेकार नहीं बैठी हू जीजी ! पूरे मन से परमात्मा से प्रार्थना कर रही हूँ कि हमारे घर में जो ज्योति जलरही है वह सदा जलती रहे ।

जेठानी- तू महासती है बहिन ! तेरा आशीर्वाद कभी व्यर्थ नहीं जासकता । हम लोग तो पूरे संसारी हैं । न परमात्मा को याद कर पाते हैं न उसकी दुनिया को ! हमारे घर में तू एक पुण्य की ज्योति है जो सदा परमात्मा को याद करती हैं, उसकी दुनिया के काम आती है और सब घर के काम आती है । इसलिये लड़के को और नई बहू को जब तक तेरे पवित्र हाथों के अक्षत न लगेंगे तब तक हम सबके अक्षतों से भी परमात्मा का आशीर्वाद न मिलेगा ।

देवरानी—मैं तो सदा तुम्हारी आज्ञा मानती ही हूँ जीजी, पर इस शुभ अवसर पर तो सौभाग्यवतियों के ही आगे आने का रिवाज है, इसलिये इस अवसरपर मुझे यही रहने दो ! बाद में तो मैं घर में हूं ही ।

जेठानी— बाद में नहीं, अभी । तेरे द्वारा अक्षत लगाये बिना कोई अक्षत नहीं लगा सकती । तू तपकी मूर्ति है । तू ब्रम्हचर्य की तपस्या करती है; सब इन्द्रियों को वश में रखती है, सब की सेवा करती है । तेरी तपस्या के तेज के मारे न घर में शनीचर का कोप होता है न ईतिभीति आती है । जब ऐसे अवसरपर तुझ सरीखी तपस्विनी का, पवित्रात्मा का, अपमान होगा तब परमात्मा हममें से किसी को माफ न करेगा । इसलिये चल उठ बहिन ! नई साड़ी पहिनले ! बारात के लौट आने का समय होरहा है ।

देवरानी— साड़ी तो अच्छी ही पहिनेहुए हूं जीजी !

जेठानी- नहीं, यह साड़ी नहीं वह रेशमी साड़ी पहिन, जो तेरे जेठ जी ने तुझे लादी है । मैं कितना कहती हूँ कि रंगीन साड़ी पहिननेमें कोई हर्ज नहीं है पर तू मेरी बात ही नहीं मानती ।

इसलिये तेरे जेठ जी तुझे सफ़ेद रेशमी साड़ी लेआये थे। अब इस मौके पर न पहिनेगी तो कब पहिनेगी ? आज मेरा देवर होता तो मुझे यह सब क्यों कहना पड़ता।

यह कहते कहते जेठानी का गला भर आया, और वह फबक पड़ी।

देवरानी ने कहा- इस शुभ अवसर पर न रोओ जीजी ! परमात्मा की जैसी मर्जी थी वैसा हुआ। उसकी लीला को हम कीड़े मकोड़े क्या समझें !

जेठानी ने आंसू पोंछते हुए कहा- तू कितनी ज्ञानी है बहिन ! तेरी बातें सुनकर मैं सोचा करती हूँ कि मैं उमर में बड़ी हुई तो क्या हुआ ? ज्ञान में तो तेरे पैरों का धूल बराबर भी नहीं हूं। मेरा देवर भी ऐसा ज्ञानी था। इसीलिये तो परमात्मा को भी उसकी जल्दी जरूरत पड़गई ! अब तो तू ही मेरा देवर है और तू ही मेरी देवरानी।

यह कहकर जेठानी पेटी में से रुफेद रेशमी साड़ी निकालकर देवरानी को इसी तरह पहिनाने लगी जैसे किसी बच्ची को पहिना रही हो। दोनों के कपोल आंसुओं से भींगे हुए थे पर आंसू की हर बूंद में प्रेम का स्वर्ग चमक रहा था।

७ टुंगी ११९५६ १८-८-५६ इ. सं

२६- ननँद भौजाई

नरक

ननंद ने मां से कहा- मां ! भाभी जब देखो तब मुझसे बोल कुबोल कहा करती है। सारे जूंठे बर्तन मुझे मलने को कहती है और जरा भी इनकार करूं तो बकझक करने लगती है ?

मां— क्यों करने लगती है बकझक ? तू उसे फटकार क्यों नहीं देती ?

ननंद—बिना फटकारे तो खाने को दौड़ती है? कुछ कहूं तब तो घर में ही न रहने देगी?

मां—क्यों न रहने देगी घर में? उसके बाप का है घर? तीन दिन में ही मालिकी का घमंड आगया? कंगालों को बड़प्पन पचता थोड़े ही है। अच्छा देखती हूँ।

(मां रसोई घर में गई जहां बहू रसोई बना रही थी। उसने कड़कती हुई आवाज में बहू से पूछा—

मां—बहू! तू इस लड़कीके पीछे हाथ धोकर क्यों पड़ी है?

बहू—मैंने अभी कहा क्या है तुम्हारी लड़की से? सबेरे से मैं अकेली ही तो चूल्हे में झुकी हूँ। भोजन का समय होरहा है इसलिये इतना कहा था कि बच्चों के बर्तन साफ करके थालियां लगा दो, भोजन को आते ही होंगे। इतनीसी बात में हाथ धोकर पीछे पड़ना होगया!

मां—तुझसे थालियां भी लगाते नहीं बनता?

बहू—सब बनता है, पर हाथ तो दो ही हैं, उनसे रसोई बनाऊं कि बर्तन मलूं कि थालियां लगाऊं? रोटी छोड़कर उठूं तो कहोगी खाली चूल्हा क्यों जलाती है? तवे पर रोटी डालकर उठूं तो कहोगी रोटी क्यों जलाती है? मरने को कहीं जगह भी है?

मां—इतने में ही मरने जीने की बात आगई? जिस घर में अकेली बहू होती है वहां अकेली ही वह सब काम कैसे कर लेती होगी?

बहू—वहां खानेवाले भी तो कम रहते हैं? यहां तो खाने को फौज है और करने को मैं अकेली हूँ।

मां—मेरे बाल बच्चे भी तेरी आंखों में खटकते हैं! मालूम होता है तू चुडैलन सब को खाकर ही रहेगी।

बहू—सब मिलकर मुझे ही तो खाये जारहे हैं मैं किसी को खाने को क्या बचूंगी?

इतने में बहू का पति आगया। उसे देखते ही मां ने कहा—

देखले अपनी महारानी की करतूत! तीन दिन में ही मेरे बालबच्चे उसको आंखों में खटकने लगे। वे खादाड़ों की पलटन बनगये?

बहू— क्यों बात का बतंगड़ बनाती हो? मैं सवेरे से रोटी में जुटा हूँ, इसलिये मुझे बाई से कहना पड़ा कि बच्चों के बर्तन जरा साफ करके थालियां लगालो; बस! इतना कहने से ही मैं सब को खानेवाली चुडैलन बनगई?

मां—क्या तूने नहीं कहा कि खाने को फौज है और करने को अकेली हूँ।

बहू- तो इसमें झूठ बात क्या हुई? जब कोई थालियां लगाने को भी तैयार नहीं है तब मैं क्या क्या करूं? एक को दो और चार कैसे बनूं?

बहू के पति ने उसको ननन्द से कहा—तू इतनी बड़ी होगई पर तुझे थालियां लगाना भी भारी पड़ता है। जरा काम में हाथ बटादेता तो क्या तेरे हाथ टूट जाते?

मां ने कहा तू भी उसी लड़की को डाटने डपटने लगा? जन्म से पालपोसकर इतना बड़ा किया और तीन दीन में ही बहू के हाथ विकगया?

बहू का पति- इसमें बिकने की क्या बात है? मिलजुलकर काम कर लिया जाय तो सहूलियत से होजाय।

मां—जब बहू नहीं थी तब भी सब काम हम ही करते थे; और अब बहू आगई तब भी सब काम हम ही करें। बुढ़ापे में बहू से रोटियाँ खाना भी भारी होगया। अच्छी बात है, कसम है जो अब तेरी महारानी के हाथ की रोटियाँ खाऊं? रसोई घर तेरा और महारानी तेरी। मुझे अब कुछ नहीं खाना है।

'यह कहकर भनभनाती हुई मां चलीगई। उसकी बेटी भी आंसू पोछती हुई चलीगई। बहू का पति भी बड़बड़ाया-घर आना क्या है; नरक में आना है। बड़बड़ाता हुआ वह भी घर के बाहर चला गया। रहगई अकेली बहू, सो उसने सिर पीटकर चूल्हे

में पानी डाल दिया। चूल्हे में तो आग बुझगई पर सब के दिलों में भड़क उठी। चारों दिलों में नरक का तांडव होने लगा।

स्वर्ग

ननँद- भाभी कब से तुम रसोई में बैठी हो, उठो अब मैं बैठती हूँ।

भाभी- रसोई की चिन्ता न करो बाई, अब थोड़ी ही तो रहगई है। जरा बैठने की जगह साफ कर लो, मैं उठकर थाली लगाती हूँ।

ननँद ने हँसते हुए कहा- तुम किस ध्यान में रहती हो भाभी! अभी मैंने सब बच्चों के बर्तन मल लिये, झाड़ू भी लगा ली, थालियाँ भी लगादीं और तुम्हें पता ही नहीं?

भाभी— बाहर मेरा ध्यान नहीं था बाई, इसलिये मुझे कुछ पता ही न लगा।

ननँद— तो ध्यान कहां था, मैं बताऊं?

भाभी— कहां था?

ननँद— (हँसती हुई) भैया में।

भाभी— (हँसती हुई) चलो! पगली कहीं कीं, मैं मां से कहदूँगी?

ननँद— कहदो, पर बात तो सच्ची है।

भाभी— बडी सच्चीवाली।

ननँद— अच्छा तो झूठी ही सही, पर थोड़ीसी रोटी मुझे बनालेने दो।

भाभी— वाह! बर्तन मललिये, झाड़ू लगाली, थाली आदि भी लगाली अब रोटी क्या बनाने दूं?

ननँद— हूँ! तो मैं रोटी कब सीखूंगी?

भाभी— रोटी बनाना क्या तुम्हें मुझसे कम आता है?

ननँद— अभी बहुत कसर है।

भाभी- तो वह कसर मैं थोड़े ही पूरी कर सकती हूं ।

ननँद — तो और कौन करेगा ?

भाभी — कसर पूरी करनेवाले तो शादी के बाद ऐसे मिल-जायँगे कि हम सब को भूल जाओगी ।

ननँद— जैसे तुम भूलगई हो ।

भाभी— तुमने अभी यही बात तो कही थी ।

ननँद- तो अब तुम कह रही हो; अब मैं भी मां से कहती हूं ।

भाभी- कहदो, तुम्हें मां की तरफ से भी 'पगली' का खिताब मिलजायगा ।

इतने में आई मां । उसने हँसते हुए कहा-तुम दोनों ने क्या गड़बड़ मचा रक्खी है ?

ननँद ने कहा— मां, भाभी जी से कहरही हूं कि चूल्हे के पास बैठे बैठे तुम्हें बहुत देर होगई है । उठो, बाकी रोटी मैं बना लेती हूँ, पर ये उठती ही नहीं ।

मां ने प्रेमल स्वर में बहू से कहा— उठ बैठ बेटी, बहुत देर होगई है तुझे । लड़की से भी कुछ काम कराती रह ! अब यह सयानी होगई है । इसे कब तक खिलाती कुदाती रहेगी ?

बहू— ये दिन ही तो खेलने कूदने के है मां, फिर तो जिन्दगीभर काम करना ही है । पर बाई कहां खेलती कूदती हैं । मुझे भीतर पता ही न लगा कि इनने बर्तन मललिये, झाड़ू लगाली, थालियाँ वगैरह लगालीं । बाई ने तो इस घर को भी ससुराल बना रक्खा है ।

ननँद— देख मां, भाभी मेरा मजाक करतीं हैं । और भी खूब खूब मजाक करतीं हैं ।

मां ने हँसते हुए कहा— करने दे । भाभी तेरा मजाक न करेगी तो कौन करेगा ? जानती है ऐसी भाभी पाने के लिये

कितनी तपस्या करना पड़ती है ?

बहू बोली— और ऐसी ननंद पाने के लिये भी कम तपस्या नहीं करना पड़ती ।

इतने में आया बहू का पति । उसे देखते ही ननंद बोली- क्यों भैया, अब तुम्हें मेरी रोटी अच्छी नहीं लगती क्या ?

भैया ने कहा— किसने कहा ?

बहिन बोली— मैंने भाभी से कहा-तुम सबेरे से चौके में जुती हो, थोड़ा आराम करो, कुछ काम मैं कर लेती हूं । पर भाभी मानती ही नहीं ।

भैया— अच्छा तो है, तुझे खेलने कूदने को काफी समय मिलजाता है.तो क्या बुरा है ?

भाभी ने कहा— क्या समय मिलजाता है ! मुझे पता भी नहीं लगा कि बाई ने बर्तन मल डाले, झाडू लगाली, थालियां लगादीं । मैं तो एक जगह बैठी बैठी हाथ चलाती रही पर बाई ने तो बाहर का सारा काम कर डाला । अब और क्या काम कराऊं !

भैया— इस झगड़े का निवटारा तुम्हीं करलो । हम तो यही कहते हैं—

जन्म जन्म तक करें लड़ाई ।
खेले हँसे ननंद भौजाई ॥

यह सुनते ही चारों तरफ हंसी छागई मानों नन्दन वन के फूल बरस गये हों ।

४ जिन्नी ११९५७ ता. १-३-५७

२७- बटवारा

नरक

छोटाभाई— भाई ! अब तो एक घर में रहना नहीं होसकेगा इसलिये मैं चाहता हूं कि आज बटवारा होजाय ।

बड़ाभाई— पिता जी को गये दस वर्ष होगये, इतने दिनों तुम्हें बेटे का तरह पाला पोसा, अब जब तुम कुछ काम करने लायक हुए, कुछ मदद करने लायक हुए तब अलग होने की बात करने लगे ? क्या इसलिये इतने वर्षों तक तुम्हारा बोझ उठाया था।

छोटाभाई- इसमें बोझ उठाने की कौनसी बात है ? पिता जी की जायदाद में आधा हिस्सा मेरा था। उसका मुनाफा आपने उठाया। उसमें से मेरे लिये भी कुछ खर्च कर दिया,तो क्या अहसान कर दिया ?

बड़ाभाई— इस तरह की नीचता की बात कहते तुम्हें शर्म नहीं आता ? तुम्हारे हिस्से को रकम का व्याज तो दस रुपये भी नहीं होता जब कि तुम्हारे पीछे पचास रुपया माह खर्च करना पड़ा है। मैं न सम्हालता तो व्याज तो दूर, मूल सहित सारी रकम खत्म होजाती। उस उपकार का बदला तुम यों चुका रहे हो।

छोटा— कैसा उपकार ? यह तो मैं भी समझता हूँ कि पिता जी की रकम में से क्या कितना बचाया है। कुछ दिन हिसाबाट न हो तो छिलके भी न बचेंगे। इतनेपर भी अहसान लादा जारहा है।

बड़ा— किसने खा ली तेरी जायदाद ? ईमानदारी का यही बदला है ? ऐसे आरोप करेगा तो नाश होजायगा तेरा।

छोटा— क्यों होजायगा मेरा नाश ? जो बेईमान होगा उसी का नाश होगा ? कहते हैं किसने खाली जायदाद ? खानेवाले क्या थोड़े हैं ? घर की फौज तो है ही, पर भाभी के पीहर की फौज भी तो भरी रहती है। चारों तरफ से लूट ही तो मची रहती है।

बड़ा— बालबच्चों पर भी तेरी टेढ़ी नजर है रे कंगला ! ऐसा करेगा तो जिन्दगीभर बच्चों को तरसेगा। और कितना नोच है तू ! चार दिन को मिहमान आते हैं तो तेरी नजर में खटकते

हैं ! जब कि बेचारे जितने का खाते हैं उससे ज्यादा का देजाते हैं ?

छोटा— जरूर देजाते हैं ? घर में खाने को नहीं है, टुकड़े टुकड़े को मुहताज हैं इसलिये यहां आकर दिन पूरे करते हैं। फिर भी आयेदिन भाभी साहबा को एक पर एक गहने बनकर चले आते हैं। यहां से जो कुछ चोरी से जाता है उसका आधा भी तो नहीं लौटता। घर बाहर के चोरों ठगोंने मिलकर मुझे लूट ही तो डाला है। पर भगवान है! वह सब देखता है। पापियों का नाश करके ही रहेगा ?

बड़ाभाई— हम पापी ही तो हैं। पापी न होते तो सांप को पालपोसकर इतना बडा कैसे बनाते ?

छोटा— बड़े पालने पोसने वाले ! आयु पक्की न होती, तो तुम्हारे भरोसे क्या जिन्दा रहता ?

बड़ाभाई— हे भगवान जिन्दगीभर उपकार करने का बदला क्या यही होता है कि हम चोर ठग और हत्यारे कहलायें ? (यह कहकर सिर पीटने लगता है)

छोटा चिल्लाता है— यह सब ढोंग रहने दो भाई, मेरा हिस्सा धर दो।

(इसके बाद दोनों ही बकझक शुरु करदेते हैं और कोई किसी की नहीं सुनता। नरक प्रतिध्वनित होने लगता है)

स्वर्ग

बड़ाभाई- भैया, अब तुम्हारी शादी को हुए एक वर्ष हो चुका है। इस एक वर्ष में ही बहू ने जिस प्रकार सब कामों में चतुरता और अनुभव प्राप्त कर लिया है उससे पूरा भरोसा है कि वह अच्छी तरह अलग घर बनाकर रह सकती है इसीलिये अब शीघ्र ही कुटुम्ब-जन्मोत्सव की तैयारी कर लेना चाहिये।

छोटा- ऐसी बात क्यों कहते हो भाई साहब, मैं तो अभी

भी बालक हूं। आपकी छत्रछाया के बिना कैसे रह सकूँगा ?

बड़ाभाई—अलग रहने पर भी मेरी छत्रछाया हट न जायगी भैया ? पर गुरुदेव ने जो विधान बनाया है वह बहुत सोच समझकर बनाया है।

छोटा- तो उसके लिये इतनी जल्दी क्या है भाई साहब ? मुझसे या उससे कोई कुसूर हुआ हो तो मेरा कान पकड़ लीजिये। मैं तो बालक हूं। मुझसे भूल हो सकती है और वह भी बच्चा है वह भी कोई नादानी कर सकता है। पर आपको दंड देने का पूरा अधिकार है इसलिये अभी अलग करने की बात न उठाइये।

बड़ा- तुमसे या उससे कोई अपराध नहीं हुआ है भैया ! तुम सरीखा भाई और तुम्हारी पत्नी सरीखी भ्रातृवधू बड़े पुण्य से मिलती है। इस दृष्टि से मैं कितना भाग्यशाली हूं इसका अनुभव मैं ही करता हूँ, तुम से क्या कहूँ ? पर कुटुम्ब-जन्मोत्सव का विधान अप्रिय मालूम होनेपर भी कर्तव्य समझकर करना ही पड़ता है। जब हम बेटी की शादी करके उसे बिदा करते हैं तो इसका यह मतलब थोड़े ही है कि बेटी हमसे लड़ती है या अपराध करती है इसलिये हम निकाल देते हैं। कर्तव्य समझकर आंसू बहाते हुए भी हमें बिदा करना पड़ती है। कुटुम्ब-जन्मोत्सव भी उसी तरह की एक विधि है।

छोटा- (गहरी सांस लेकर) अब आपके सामने क्या कहूं ? इच्छा हो या न हो, आप जैसा हुक्म देंगे वैसा करना ही पड़ेगा। यों मैंने आपको भाई कभी नहीं माना, न भाभी जी को भाभी माना। पिताजी और माता जी के स्वर्गवास के बाद आपको ही मैंने पिताजी समझा, और भाभी जी को माताजी समझा। अब आप जैसी व्यवस्था उचित समझें मुझे मानना ही है।

(यह कहकर आंसू बहाते हुए छोटे भाई ने अपना सिर बड़े भाई के चरणों पर रख दिया। बड़े भाई के भी आंसू बहने लगे। उनने छोटे भाई को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया

और कहा-)

बड़ा- यही अवसर है भैया, जब अपन अलग होकर सदा के लिये अटूट प्रेम से रह सकते हैं। मैला मन करके अलग होने से सदा के लिये कुटुम्ब फट जाता है। इसीलिये गुरुदेव ने कुटुम्ब-जन्मोत्सव का कल्याणकारी विधान बनाया है।

छोटा—ठीक है भैया; आप जैसा उचित समझें करें!

बड़ा—बहुत बड़ा आयोजन नहीं करना है। फिर भी उत्सव में २५-५० मित्रों और कुटुम्बियों को बुलाना तो पड़ेगा ही। उसके लिये कोई सुभीते का दिन रख लेंगे। परन्तु उसके पहिले सम्पति का बटवारा कर लेना है। सो उसका सब हिसाब साफ है। अपना इच्छानुसार आधा तुम लेलो, आधा मैं लेलूंगा। देख लो तुम सारा हिसाब। बच्चों के शरीर पर जो गहना है उसके बदले में तुम्हारे हिस्स में कुछ नगद रकम बढ़ा दी है।

छोटा बहुत अच्छा किया है भाई साहब आपने; अब तो मुझे सारा हिसाब समझकर ही बटवारा करना पड़ेगा, नहीं तो आपके अन्याय का कुछ ठिकाना न रहेगा। बच्ची के शरीर पर जो गहने हैं उसके बदले में भी मुझे नगद रकम लेना पड़ेगी; और आपकी बहू की अपेक्षा जो भाभी जी के शरीर पर आधा भी गहना नहीं है वह हिसाब भरें में जायगा? जिन्दगी भर आपसे सेवा ली और जाते समय आपको लूटकर जाऊंगा?

बड़ा- इसमें लूटने की क्या बात है भैया? दुनिया में जिस तरह पैतृक सम्पति का बटवारा होता है उसी तरह होना चाहिये।

छोटा- तो पैतृक सम्पत्ति का ही बटवारा होना चाहिये। परन्तु पिता जी के बाद जो सम्पत्ति आपने बढ़ाई है उसमें मेरा क्या अधिकार है? आपने मेरे विवाह के अवसर पर जो गहना चढ़ाया था वह भाभी जी के गहनों से एक हजार रुपये का ज्यादा है। सो मेरे हिस्स में से एक हजार रुपये मुझे दीजिये मैं भाभी

जी के चरणों पर चढ़ाकर उन्हें प्रणाम कर लूं। रही बच्ची के गहनों की बात, सो जैसी बच्ची आपकी वैसी मेरी, उसके गहनेपर नियत डुलाऊंगा तो आदमी न रहूंगा।

बड़ा- भैया, सम्पत्ति मैंने बढ़ाई जरूर है, परन्तु मूल पूंजी तो पिता जी के हाथ की है। उसी के दमपर मैंने पूंजी बढ़ाई है। इसलिये उसमें भी तुम्हारा हिस्सा है।

छोटा- पिता जी की पूंजी अपने आप तो नहीं बढ़गई, आपका पसीना न लगता तो वह कहां से बढ़ जाती ? मेरा हिस्सा तो मेरे पालन पोषण में ही खत्म होगया होता।

बड़ा- यह तो तुम्हारा पुण्य था भैया, कि सब की गुजर होगई और सम्पत्ति भी बढ़गई। अपने पुण्य का हिस्सा तुम्हें लेना ही चाहिये।

छोटा- मानता हूँ भाई साहब कि मैं बड़ा पुण्यवान हूँ, नहीं तो ऐसे भाई और ऐसी भाभी की छत्रछाया कैसे पाता ? आपने मुझे पालपोसकर आदमी बनादिया; काम से लगादिया, शादी कर दी, इनसे बढ़कर और पुण्य का फल क्या चाहिये। न्यायोचित अधिकार की बात तो यह है कि मैं पहिने हुए कपड़े लेकर ही आपके आशीर्वाद के साथ अलग होजाऊं। आपने जो मेरे साथ किया उसमें मेरा हिस्सा चुकगया। अब हिस्साबाट की जरूरत ही नहीं है। फिर भी जब आशीर्वाद के रूप में आप देना ही चाहते हैं तो मैं कम से कम लूंगा। मुझे भी आप अपना बच्चा समझिये। और भाई की तरह नहीं; किन्तु अपने तीन बच्चों के समान मुझे भी चौथा बच्चा समझकर चौथा हिस्सा दीजिये।

(दोनों भाइयों की आंखें भीगगईं। बड़ेभाई ने गद्गद स्वर में इतना ही कहा कि- 'न जाने कैसी अनोखी तपस्या मैंने पहिले जन्म में की थी जिससे इस जन्म में तुम सरीखा भाई पाया'। दोनों की आंखों के आंसुओं से जो संगम तीर्थ बना उसपर अनेक स्वर्ग न्यौछावर किये जासकते हैं।)

२८ पिता पुत्र

नरक

पिता- बेटा, मैंने तुझे घर का सारा कारबार इसलिये सौंप दिया था कि तू पूरी स्वतंत्रता से अपना विकास कर सके और मैं हर तरह निश्चिन्त रहकर कुछ दिन दुनिया की सेवा कर सकूं। पर हाथ में कारबार आने पर तू मुझे एक एक पैसे को तरसा रहा है। तू मेरा बेटा होकर भी ऐसा विश्वासघात करेगा, इसकी कल्पना भी नहीं थी।

पुत्र- क्या विश्वासघात किया मैंने ? तुम्हें भूखों मार रहा हूँ क्या ?

पिता—भूखों तो कुत्ते को भी नहीं मारा जाता। क्या कुत्ते की तरह रोटी का टुकड़ा पाने के लिये ही तुझे पाला पोसा था ? क्या इसीलिये सारा कारबार तुझे सौंपा था ?

पुत्र— तो और क्या चाहते हो मुझ से ? मेरी जान चाहते हो ?

पिता- तेरी जान चाहता तो पाल पोसकर इतना बड़ा न करता, और सारा कारबार तुझे न सौंप देता ? जब तू बच्चा था तभी तेरी गर्दन मसल देता।

पुत्र--बड़ी कृपा की तुमने, जो मेरी गर्दन नहीं मसल दी।

पिता—कृपा बड़ी की कि छोटी, पर आज एक एक कृपा के लिये मुझे पछताना पड़ रहा है। जिन्दगीभर धर्मकार्य में या जनसेवा के कार्य में मैं सैकड़ों रुपये खर्च करता रहा पर अब दस बीस रुपयों के लिये भी तरसना पड़ता है। अब मैं किसी को मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहा। लोग समझते हैं कि बुढ़ापे में मैं कंजूस होगया हूं, अपने बालबच्चों में इतना रमगया हूं कि दीन दुनिया को भूलगया हूँ पर अपनी दुर्दशा किसे बताऊं ? किससे कहूं

कि मेरी दशा भिखारी से भी खराब है। भिखारी के हाथ में भी चार पैसे होते हैं पर मेरे हाथ में विष खाने को भी पैसा नहीं है। मैं लुट चुका हूँ, कंगाल हो चुका हूँ।

पुत्र—हां ! मैंने निगलली है तुम्हारी सारी जायदाद ?

पिता—निगलने को तू अकेला नहीं है। तेरी औरत है, तेरे बालबच्चे हैं, मित्र दोस्त हैं, रिश्तेदार हैं, सभी तो निगलते हैं। भूखा मरने को है तो तेरा बाप है। उसी का पाप सब से बड़ा है कि तेरे ऊपर उसने विश्वास किया।

पुत्र- तो क्या तुम्हारे लिये औरत और बच्चों को भूखों मारने लगूं ? उनका भरपेट खाना भी तुम्हें अखर रहा है ?

पिता—उनका भरपेट खाना अखरता होता तो आज तक वे जिन्दे न बचते। कभी के खतम होगये होते। तुझे वे जितने प्यारे हैं मुझे उससे ज्यादा प्यारे रहे हैं। पर प्यार का बदला तुम लोग जिस तरह चुका रहे हो उसे भगवान देखता है।

पुत्र— भगवान कैसा देखता होगा सो तो भगवान जाने, पर तुम्हारी ये विषैली आंखें जरूर दिन रात घूरती रहती हैं। दिन-रात यह घूरना, दिनरात यह बड़बड़ाहट, दिनरात यह बददुआ, कहां तक सहूं यह सब ? सारे गांव में बदनाम करदिया है मुझे।

पिता—बदनाम मैंने नहीं कर दिया है तेरी करतूतों ने किया है। दुनिया के खुद ही आंखें हैं। वह मेरी दुर्दशा खुद ही देखती है। तूने किस तरह कुल का नाम डुबाया है यह भी उसे समझमें आता है। तू खुद ही बदनामी और सर्वनाश के रास्ते में दौड़ता जारहा है। जैसा जो बोयगा वैसा ही वह काटेगा।

पुत्र- क्या विष बोदिया मैंने ?

पिता—जिस बाप ने तुझे पाल पोसकर इतना बड़ा किया, तुझे सारी जायदाद सौंपदी; उसी की तू कभी खबर नहीं लेता। उसीकी जायदाद में से चार पैसे उसके हाथपर नहीं रखता। बुढ़ापे

में उसे कुछ सेवा की जरूरत होसकती है इसकी कोई पर्वाह तुझे नहीं है। मामूली कपड़ों लत्तों के लिये भी उसे महीनों चिल्लाना पड़ता है। छोटे से छोटे काम के लिये भी पच्चीस। बार कहना पड़ता है पर सब सुनी अनसुनी कर जाते हैं। यह सब विष नहीं तो क्या है। बुलाने पर भी मौत नहीं आती इसलिये जीना पड़ता है। जीने की इच्छा ही तूने मारदी है।

पुत्र- अभी तुम्हें मौत क्या आयगी ? हम सबको खाने बाद ही आयगी तो आयगा।

पिता—बक ले हरामखोर, जो चाहे बक ले; (छाती पीट-कर) इसी छाती में तेरे लिये प्यार और विश्वास भरा था उसीका दंड भोगरहा हूं। (बार बार छाती पीटता है)

स्वर्ग

पिता- बेटा, मेरी पेटी में सौ रुपये के नोट तूने किसलिये रक्खे हैं ?

पुत्र-हाथखर्च के लिये हैं पिताजी !

पिता- अब मेरा हाथखर्च क्या है बेटा ? खाने पीने कपड़े आदि सब बातों की व्यवस्था तू इतनी अच्छी तरह से रखता है कि मुझे खुद खर्च करने की कुछ जरूरत ही नहीं रहती। और जब जरूरत होगी तब तुझसे मांगलूंगा।

पुत्र- सब कुछ आपका ही है पिताजी, और फिर आपको ही मांगने का अवसर लाने दूं, तो मुझ सरीखा कपूत और कौन होगा ?

पिता—इसमें मांगने की क्या बात है बेटा, यह सूचना करने की बात है।

पुत्र- पर सूचना करनेमें आप कितने ढीले हैं यह मैं जानता हूँ। यह मैं आपसे ही सीखा हूं कि जो कार्य सहज ही होना चाहिये

उसके लिये सूचना करने का मौका आये यह सूचित किये जानेवाले की पशुता की निशानी है।

पिता—पाठ तो तूने बहुत अच्छा पढ़ा बेटा। इसीलिए तेरा व्यवहार ऐसा है कि कोई सूचना करने का मौका ही नहीं आने देता। छोटी से छोटी चीज का तू ध्यान रखता है कि कब कौनसी चीज मुझे जरूरी है। और अकेला तू ही क्या; बहू भी इस बात का पूरा खयाल रखती है। इसीलिये तो मुझे रुपयों की कोई जरूरत नहीं है।

पुत्र-अपने खर्च के लिये न सही, जनसेवा के लिये तो जरूरत हो ही सकती है। पहिले की बात दूसरी है पर जब आपके चरणों की कृपा से चार पैसे की आमदनी बढ़ी है तब उसके अनुपात में जनसेवा के लिये कुछ खर्च भी तो बढ़ना चाहिये।

पिता- बहुत अच्छा विचार है बेटा तेरा, पर इसके लिये मेरे पास रुपये रखने की क्या जरूरत है? तू खुद ही समझदार है, जनहित के लिये जिस कार्य में पैसा लगाना हो लगाया कर! पुण्य प्रवृत्तिमें भी तेरा विकास देखकर मेरी छाती फूली नहीं समाती है।

पुत्र— पिताजी! जो कुछ मैं बना हूँ, सब आपकी छाया ही है। अन्यथा जन्म के समय तो मैं पशु की तरह ही था, वह तो आपकी कृपा थी, त्याग था, स्नेह था, जिससे मैं मनुष्य बन सका। पुण्य प्रवृत्तिमें भी यदि कुछ मेरा विकास हुआ है तो वह भी आप की ही देन है।

पिता—तो उसे अपने हाथ से ही सफल कर बेटा!

पुत्र—आपके पवित्र हाथों से जो पुण्य कार्य होगा और जिसप्रकार विवेक पूर्वक होगा वह मुझ सरीखे बालक के हाथ से नहीं होसकता।

पिता— पर तू क्या कम विवेकी है?

पुत्र- आपकी कृपा से विवेक भी मुझे मिला है फिरभी दुनिया ऐसी रंगरंगीली है कि पात्र अपात्र का विचार जितना आप अपने अनुभवसे कर सकते हैं उतना मैं नहीं कर सकता।

पिता—अच्छी बात है यह विभाग मैं ही सम्हाल लेता हूँ पर इसके लिये मेरे पास रुपये रखने की जरूरत नहीं है। जब जहां खर्च करना होगा तब वहां खर्च करने के लिये मैं तुझे सूचित कर दूंगा।

पुत्र— इस तरह आप न कर सकेंगे। आपके पास बच्चे आते हैं, आप कहीं जाते हैं तो वहां भेंट चढ़ाते हैं इन सब स्थानों पर आप मुझे कैसे सूचित करेंगे। और करेंगे भी तो क्या यह ठीक मालूम होगा कि लोग यह समझें कि अब आपके पास चार पैसे भी नहीं रहते।

पिता—मालूम पड़ने दो! इससे क्या हानि है?

पुत्र- नहीं पिताजी, इससे मेरी बड़ी बदनामी है। आपको सुखशान्ति मिले, चिन्ता न रहे इसलिये घरके काज का बोझ मैंने उठालिया है, अन्यथा मालिकी पूरी तरह आपकी है। यह न्याय तो है ही, पर इसी में मेरे पुत्रत्वकी शोभा है। अधिकार हड़प लेने में तो पशुता ही मेरे पल्ले पड़ेगी। मुझे इससे बचाइये!

(यह कहकर पुत्र ने पिताके पैरोंपर सिर रखदिया और उसकी आंखें गीलीं होगईं। पिता ने भी पुत्र का सिर हाथोंसे उठाकर उसे चूमलिया। और पिता की भी आंखें भर आईं। स्वर्ग में वैभव भले ही अधिक कल्पित किया गया हो पर ये आनन्दाश्रु स्वर्ग में भी दुर्लभ हैं)

२३ अंका ११९५८ इ सं. १७-४-५८

——*

२३-ऋण वसूली

नरक

साहुकार—क्यों जी; कितने बार तकाजा किया, अभी तक तुम मेरे रुपये दे ही नहीं रहे हो।

ऋणी—तुम भी हाथ धोकर मेरे पीछे पड़े हो। जब सुभीता होगा. मैं खुद दे दूँगा। तुम्हारे रुपये खा थोड़े ही जाऊंगा।

साहुकार-तुम्हें तो जिन्दगीभर सुभीता न होगा। एक बार रुपये हाथ में आये कि देने को जी थोड़े ही चाहता है।

ऋणी— तो क्या तुम्हारा ऋण चुकाने के लिये बालबच्चों को भूखों मारूं?

साहुकार- इससे हमें कोई मतलब नहीं, हमारे तो रुपये धरदो।

ऋणी—रुपये नहीं है तो क्या जान लोगे?

साहुकार- जान लेकर क्या चाटूंगा? मुझे रुपये चाहिये। बेईमान कहीं का!

ऋणी—देखो, जबान सम्हालकर बोलो, नहीं तो ठीक नहीं होगा।

साहुकार- जबान सम्हालकर ही बोल रहा हूँ। जो बेई-मानी करता है वह बेईमान नहीं तो क्या है?

ऋणी— क्या बेईमानी करली? खा लिये क्या तुम्हारे रुपये?

साहुकार—समय पर रुपये न देना, जब मांगो तब कोई न कोई बहाना बनाना.बेईमानी नहीं तो क्या है? कहते हैं-बालबच्चों को क्या भूखों मारूं? पर हराम की रोटी खिलाकर पेट भरा तो क्या भरा?

ऋणी— तुम्हारे बाप का क्या खालिया?

साहुकार—मेरे बाप का नहीं खाया मेरा खाया है। जब तक मेरा ऋण नहीं चुकाते तब तक मेरी जूठन ही खाते हो। मेरा ऋण चुकाकर रोटी खाओ तब समझेंगे कि मर्द की तरह कुछ कमाकर खारहे हो। जब तक ऋण नहीं चुकाते तब तक कुत्ते की तरह जूठी पत्तल ही चांटते हो। भले ही घी चुपड़ी क्यों न खारहे हो? मर्द होते तो सूखी रोटी खाते; पर अपनी कमाई की खाते?

ऋणी- अपनी कमाई का ही तो खाता हूं, पर तुम्हारा पाप का धन मेरे घर में आने से ही मेरा नाश होरहा है। नहीं तो मेरी यह दशा न होती।

साहुकार- जिसदिन मेरे सामने ऋण मांगने के लिये पूछ हिलाते आये थे उस दिन तो मेरा पाप का धन तुम्हारे घर में नहीं था, फिर क्यों ऐसी दशा हुई कि मेरे द्वार पर पूंछ हिलाते आना पड़ा। बेईमानी और कृतघ्नता की कोई हद होती है पर तुम हद के पार चलेगये हो।

ऋणी—तो क्या बुरा किया है? तुम्हारे पास फालतू पैसा था और मुझे जरूरत थी इसलिये लेलिया। जब मेरे पास फालतू पैसा होजायगा तब देदूंगा।

साहुकार—तो उसीदिन कहते कि फालतू पैसा देदो, जब मेरे पास फालतू होगा तब दूंगा। झूठा वायदा करके ठगने की बदमाशी क्यों की? कितने कष्ट से मौके के लिये थोड़ा सा पैसा जोड़ा था जो तुमने ठगलिया। आज मौका आनेपर मुझे पैसे पैसे के लिये तड़पना पड़रहा है। तुम इतने विश्वासघाती बेईमान और नीच हो इसकी कल्पना ही नहीं थी। पर परमात्मा है! कुत्ते की तरह तुम्हें दर दर न भटकना पड़े तब बात।

(यह कहकर साहुकार भनभनाता हुआ चला गया। क्रोध और पश्चात्ताप से उसका हृदय जल रहा था। ऋणी भी घरमें भन-

भनाता रहा, अपमान से उसका हृदय भी जल रहा था। वह खुद भी नरक भोग रहा था और साहुकार को नरक भोगने के लिये उसने विवश कर दिया था)

स्वर्ग

ऋणदाता—यह क्या किया आपने! रुपयों के लिये इस तरह टिकिट लगाकर चिट्ठी लिखने की क्या जरूरत थी? क्या मुझे आपपर विश्वास नहीं है?

ऋणी—विश्वास तो है फिरभी व्यवहार की नीति पालने से सुभीता ही होता है। हर एक आदमी के दिलमें फरिश्ता और शैतान दोनों रहते हैं। थोड़ी भी ढील पाकर शैतान उभड़ सकता है इसलिये उसके उभड़ने का मौका न देना ही अच्छा।

ऋणदाता—पर मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आपका शैतान कभी नहीं उभड़ सकता।

ऋणी—यह आपकी कृपा है फिर भी मुझे उसके बारेमें चौकन्ना रहना ही चाहिये। जिससे मैं दिवाली के बाद ही आपका रुपया लौटा सकूं।

(दिवाली के दूसरे दिन)

ऋणी— ये लीजिये रुपये। आपने बड़ी कृपा की जो मौके पर रुपये दिये।

ऋणदाता—पर इतनी जल्दी रुपयों की क्या जरूरत थी? कल ही तो दिवाली हुई और आज ही आप रुपये चुकाने आगये।

ऋणी—समय पर रुपये न चुकाना भी विश्वासघात है, पाप है। क्योंकि इससे ऋणदाता की परेशानी बढ़ती है; अपने वचन की प्रामाणिकता नष्ट होती है। भविष्य में इसप्रकार सहयोग करने की इच्छा नहीं रहती। ऋणी का गौरव भी नष्ट होता है, उसमें दीनता आती है। अनेक तरह से झूठ बोलना पड़ता है। इन सब बातों से मैं बहुत घबराता हूँ।

ऋणदाता-जहां आदमियत है वहां ऐसी बात से घबराहट होना स्वाभाविक है। जिन्हें ऐसी घबराहट नहीं होती, और न उसके लिये ठीक प्रयत्न करते हैं वे मनुष्य के आकार में पशु ही हैं फिर भी ऐसा मालूम होता है कि इस बारे में आप जरूरत से ज्यादा चौकन्ने हैं।

ऋणी -कर्तव्य के निर्वाह में कितना भी चौकन्ना रहा जाय वह जरूरत से ज्यादा नहीं होता। क्योंकि आदमी थोड़ी भी ढील पाकर कर्तव्य से भ्रष्ट होजाता है। भले ही वह ईमानदार बने रहने का झूठा सन्तोष करता रहे। पर किसी न किसी अंश में वह बेईमान हो ही जाता है।

ऋणदाता—आपके इस विश्लेषण से मैं सहमत हूँ। मुझे कल्पना भी नहीं थी कि ब्याज के रूपमें यह धर्मज्ञान मुझे मिलेगा। मैंने तो रुपये बिना ब्याज के ही दिये थे।

ऋणी -पर मैंने तो ब्याज पर ही लिये थे। मूल रकम के साथ पचास रुपये ब्याज के भी हैं।

ऋणदाता—यह आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। मैं कोई साहुकारी का धंधा करनेवाला नहीं हूँ। संकट में किसी मित्र के कुछ काम पड़जाना धंधा नहीं बन सकता।

ऋणी—मेरे ऊपर विश्वास करके आपने जो इतनी रकम देदी; यही उपकार क्या कम है? इस उपकार के बदले में ब्याज मारकर मैं अपकार करूं तो मेरी नीचता की सीमा न रहजायगी। बाकी ब्याज लेने में अनुचित क्या है? परिश्रम के साथ पूँजी मिल जाने से कमाई कई गुणी होने लगती है; इसप्रकार पूँजी में जब कमाने की शक्ति है तब किसी की पूँजी का उपयोग करके ब्याज न देना, या तो चोरी है या भीख है।

ऋणदाता- पर जब मैं इच्छा से ब्याज छोड़रहा हूं, तब इसमें चोरी नहीं होसकती। और जब मैं आपको कुटुम्बी मानता

हूं तब इसमें भीख का क्या सवाल है ? माफ कीजिये, मैं साहुकारी नहीं करना चाहता ।

ऋणी- इसमें साहुकारी की क्या बात है ? बिना साहुकारी किये भी यदि आपने वह रुपया बेंक में रक्खा होता तो बेंक भी आपको व्याज देता । आप बेंक से व्याज लेते भी हैं । फिर मुझ से न लें तो इसका मतलब यह कि आप जिन्दगीभर मुझे ऋणग्रस्त रखना चाहते हैं । और आगे के लिये आप अपना द्वार बन्द करना चाहते हैं कि मैं आपके द्वार पर कभी संकटमें भी न आऊं ?

ऋणदाता—यह तो आपने ऐसी बात कहदी कि मैं कुछ कह न सकूं ! अच्छी बात है, लेलेता हूँ व्याज ! पर पचास नहीं पच्चीस ही लूंगा क्योंकि बेंक की दर से इतना ही व्याज होता है ।

ऋणी-पर मैंने बेंक से रुपये लिये होते तो मुझे ५०) व्याज के देना पड़ते । मैंने पचास देकर २५) कम ही दिये हैं ।

ऋणदाता-आपको क्या देना पड़ता इससे मुझे कोई मतलब नहीं । पर मुझे पच्चीस से अधिक न मिलते इससे मैं उससे ज्यादा नहीं लेसकता । क्षमा करें ।

ऋणदाता ने आधा व्याज और मूल रकम लेते हुए मनही मन कहा—क्या फरिश्ता आदमी है !

ऋणी ने मनही मन कहा-क्या देवता पुरुष है ।

८ जिन्नी ११९५८ इ. सं. ५-३-५८

❀—❀—❀

३०-पड़ौसिन का बच्चा

नरक

पड़ौसिन-बहिन ! जरा अपने बच्चेको सम्हालकर रक्खो ! आयेदिन कुछ न कुछ उपद्रव और नुकसान किया करता है। कहां तक सहाजाय यह सब ?

बच्चे की मां—क्या किया करता है मेरा बच्चा ? जरा से बच्चे ने क्या कहर बरसादिया ?

पड़ौसिन— क्या क्या गिनाऊं ? कभी पत्थर मारता है ? कभी कोयले से दीवार खराब करता है, कभी कोई चीज उठाकर भागता है, कभी बुरी गालियाँ बकता है ? अभी उसने कांच की शीशी ही फोड़ दी। लाड़ला है तो घरमें जो चाहे कराओ पर दूसरे का नुकसान क्यों कराती हो ?

बच्चे की मां—मैं नुकसान कराती हूं ? मैं नुकसान करने को कहती हूँ ? बच्चा है, कुछ करता होगा पर तुम एक की दस बताती हो। धजी का सांप बनाती हो। तुम्हारी आंखों में ही मेरा बच्चा खटकता है।

पड़ौसिन—मेरी आंखों में बच्चा खटकता है ? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मैं इस बच्चे को कितना खिलाती पिलाती थी, खूब प्यार करती थी ? और आज भी करती हूं इसीलिये तो उसे घरमें घुसने देती हूँ। लेकिन जैसे उसके लच्छन हैं वे तो सहन नहीं किये जासकते। उसे सुधारने की बात कहना उसका आंखों में खटकना कहलाता है ?

बच्चे की मां—बड़ी सुधारनेवाली, जरा जरा सी बात पर उसका कचूमर बनाती हो। जब देखो तब बच्चा रोता हुआ आया करता है तुम्हारे पास से। वह तो भगवान ही रखवारा है; नहीं तो तुम तो उसे एक दिन न रहने दो।

पड़ौसिन—तुम्हारे बच्चे को जो मारती हो उसका नाश होजाय। नहीं तो झूठ बोलनेवाली का नाश होजाय। आज तक इतना प्यार किया, इतना खिलाया पिलाया उसका यही तो बदला है। बच्चा ऐसा बेईमान है कि कितना भी खिलाओ पिलाओ, पर ज्योंही कोई चीज तोड़ने फोड़नेसे रोका कि रोता हुआ भागा। सांपके बच्चे ऐसे ही होते हैं। दूध पिलाने पर भी काटते हैं।

बच्चे की मां– आःहा! देखलिया तुम्हारा प्यार और खिलाना पिलाना। बच्चे की जरा जरा सी बात तो आंखों में खटकती है और चली है प्यार करने। प्यार की दुहाई भी देती हैं और गालियाँ भी देती जाती हैं, बेईमान भी कहती जाती हैं; सांप का बच्चा भी कहती जाती हैं। ऐसे झूठों का भगवान कभी भला न करेगा।

पड़ौसिन—मैं भी भगवान से यही कहती हूं कि जो झूठी हो उसका नाश होजाय, सो भगवान तो न्याय करेगा ही, परन्तु खबरदार अब तुम्हारा लड़का मेरे दरवाजे पर कभी दिखाई दिया तो।

बच्चे की मां—हां हां! नहीं दिखाई देगा तुम्हारे घर के बिना बच्चा मर नहीं जायगा।

पड़ौसिन—मर क्यों जायगा? मारनेवाली तो मैं हूं। अब खूब जी जायगा। शैतान की तरह अमर होजायगा।

(इसके बाद दोनों घरोंमें चलीगई और घरोंमें बड़बड़ाहट चलती रही। बच्चे की मां ने क्रोधमें बच्चे को पीट दिया; इस प्रकार बड़बड़ाहट के नरकगीतों के साथ रोनेका संगीत भी बजने-लगा)

स्वर्ग

बच्चे की मां—(पड़ौसिन के घर आकर) बहिन! क्या

उपद्रव कर गया बच्चा ? यहां से दौडता हुआ भागा है, कुछ सहमा सा है, कुछ न कुछ नुकसान कर गया होगा।

पड़ौसिन—कर गया होगा, बच्चा ही तो है । कांच की शीशी से खेल रहा था, हाथ से सटक पड़ी होगी इसलिये फूट गई।

बच्चे की मां—अरे ! ये टुकड़े उसी के तो पड़े हैं ! यहां हाथ से सटकने कहां से आयगी शीशी उसने गेंद की तरह उठकर फेंक दी होगी । चारों तरफ कांच बिखर गया है। (यह कहकर कांच के टुकड़े बीनने लगती हैं)

पड़ौसिन—रहने भी दो। मैं उठा लूंगी।

बच्चे की मां-सो तो उठा ही लोगी, पर मैं अभी फुरसत में हूँ इसलिये उठालेती हूं। कैसी अच्छी शीशी फूटगई !

(बच्चे की मां कांच का एक एक टुकड़ा बीनकर जगह साफ कर गई । और थोडी देर में एक अच्छा शीशी लेकर आगई।)

बच्चे की मां—देखो तो बहिन । अभी इस शीशी से काम चलालो। काम चल तो जायगा ?

पड़ौसिन- पर शीशी के बिना कोई काम अड़ा तो है नहीं; अभी तो खाली ही पड़ी थी। जब जरूरत होगी तब देखा जायगा।

बच्चे की मां—जरूरत पहिले से नोटिस देकर थोड़े ही आती है । न जाने कब आजाय। इसलिये मौके पर चीज हाजिर रहना चाहिये। और मेरे यहां तो महीनों से फालतू पड़ी थी इसलिये ले आई । रक्खी रक्खी कुछ दूध तो दे नहीं रही थी।

पड़ौसिन-पर अभी मुझे भी तो जरूरत नहीं है, जब जरूरत होगी तब मांगलूंगी।

बच्चे की मां— मांगली तुमने ? चार आना पैसा खर्च करके सीधे बाजार से मँगाओगी।

पड़ौसिन—मैंने तो वह शीशी चार पैसे में ही मँगाई थी। तुम्हारी यह शीशी जरूर चार आने की है। सो चार पैसे के बदले

चार आने का माल नहीं लेसकती।

बच्चे की मां-पर इसमें बदलेकी क्या बात है? मैं बाजार से खरीदकर थोड़े ही लाई हूँ। बेकार पड़ी थी इसलिये ले आई। काम निकल जाना चाहिये, चार पैसे और चार आने के हिसाब से क्या मतलब?

पड़ौसिन- पर यदि मेरे बच्चेने फोड़ी होती तो काम कैसे निकलता?

बच्चे की मां- पर यदि मेरे बच्चे ने घर की यही शीशी फोड़ दी होती तो मेरा काम कैसे चलता?

पड़ौसिन-तर्क में तो तुमसे सदा हारना ही पड़ता है!

बच्चे की मां- सदा हारो चाहे न हारो। पर ऐसे अवसरों पर हारने में ही स्वर्ग का बीज सुरक्षित है।

(जाने लगती है पर दीवार पर नजर पड़ते ही चौंक पड़ती है?)

बच्चे की मां—अरे! यह दीवार किसने कोयले से गूद डाली? उसी शैतान की करतूत मालूम होती है। घर पर भी दीवाल गूद रहा था, मैंने रोका तो यहां यह सब करतूत कर गया।

पड़ौसिन-बच्चा है, खेलता ही है।

बच्चे की मां—अरे, पर ऐसा भी क्या खेल! कल ही दीवाली के लिये सारा मकान लीप पोत कर साफ किया गया; और आज उसने सब गन्दा कर दिया।

पड़ौसिन- बच्चा है, अभी इन बातों को क्या समझे?

बच्चे की मां- हां! बातों से समझने की उमर तो अभी है नहीं, अभी तो बच्चे चपतयाने की ही भाषा समझते हैं। सो जरा चपतयाना पड़ेगा।

पड़ौसिन- नहीं! उसे मारना नहीं।

बच्चे की मां—समझाने के लिये जितना जरूरी है उससे

अधिक कुछ न किया जायगा।

(यह कहकर बच्चे की मां चलीगई)

दूसरे दिन पड़ौसिन आकर उलहने के स्वर में बोली-यह क्या किया बहिन तुमने ? दो चार जगह कोयले के दाग लगे रहते तो क्या मकान गिरा पड़ता था ? हम लोगों के ऊठने के पहिले ही पूरी दीवार पर तुमने सफेदी देदी। भला इसकी क्या जरूरत थी ?

बच्चे की मां- तुम्हारे दरवाजे पर सफेदी करने का विचार थोड़े ही था। मेरी दीवार भी बच्चे ने खराब कर दी थी इसलिये सोचा कि चूना घर में पड़ा ही है जरा हाथ मार दूँ तो त्यौहार के दिन अच्छा दिखेगा ? दिन में तो फुरसत मिलती नहीं इसलिये जरा सबेरे उठकर घर की दीवार पोत डाली। पर चूना जरा ज्यादा ही था, और खयाल आया कि तुम्हारी दीवार भी तो खराब होगई है उसपर भी दो हाथ मार दिये।

पड़ौसिन—तुम्हारी इन बनावटी बातों को काटने की तर्क-शक्ति तो मुझमें नहीं है बहिन ! पर समझती सब हूँ। इसलिये यही कहती हूँ, कि बड़े पुण्य से तुम्हारे पडौस में रहने का सौभाग्य पाया है। तुम्हारे पड़ौस में रहना स्वर्ग में रहने से भी अच्छा है।

बच्चे की मां—जहां बिना कहे सब लोग अपनी अपनी जिम्मेदारी पूरी करते हैं वहीं तो स्वर्ग है बहिन !

२० धामा ११९५७ इ सं. उदयरात्रि ३॥ बजे

३१- मेहमान

नरक

मिहमान-नहानेके लिये बहुत ऊंचे दर्जेका साबुन चाहिये। मामूली बट्टी से काम न चलेगा।

घरवाला-हमारे यहां न ऊंचे दर्जे की बट्टी है न मामूली। वहां घिसना (शरीर रगड़ने के लिये एक खप्पर का टुकड़ा) रक्खा हुआ है उसी से शरीर घिस लीजिये।

मिहमान—आपके घर में आदमी नहीं सब घोड़े ही घोड़े मालूम होते हैं। घोड़े का शरीर जैसे खुरेरे से रगड़ा जाता है उसी तरह आपके यहां सब लोग घिसने से शरीर रगड़ा करते हैं। आप भी क्या कंगाल हैं!

घरवाला—कंगाल तो हैं, पर भिखारी नहीं हैं। जो चीजें जिन्दगी में सूंघने को भी नहीं मिलतीं उनका भोग मिहमान बनकर हम मांग मांग कर नहीं करते।

मिहमान—तुम मेरा अपमान कर रहे हो।

घरवाला—तुम्हें अपमान मालूम भले ही हुआ हो, पर अपमान हुआ नहीं है। जो जिस मान के लायक है उससे कम किया जाय तो अपमान होता है। भिखारी को टुकड़ा ही दिया जाता है और इसमें उसका अपमान नहीं, सन्मान ही होता है।

मिहमान—मुझे तू भिखारी कहता है ? मैं तुझ सरीखे सैकड़ों को खिला सकता हूँ।

घरवाला—सैकड़ों को खिलाते खिलाते ही, शायद अपने लिये कुछ बच नहीं पाता, इसलिये मिहमान बनकर भीख मांगना पड़ती है और जिन्दगीभर की कसर निकालना पड़ती है।

मिहमान—तुम बहुत ही नीच हो। अब मैं जिन्दगीभर

तुम्हारे घर में पैर न रक्खूंगा।

घरवाला—आपकी इस कृपा के लिये धन्यवाद।

मिहमान—हूं:! धन्यवाद! असभ्य जंगली कहींके।

मिहमान बकझक करते हुए अपनी झोली उठाकर चला-गया।

स्वर्ग

घरवाला—(मेहमान से) स्नाना घर की अलमारीमें तेल साबुन था पर आपने उसका उपयोग ही नहीं किया।

मिहमान-अब की बार के प्रवास में धूल ही नहीं लगी, न पसीना आया इसलिये साबुन की कोई जरूरत ही नहीं मालूम हुई। यों मैं हफ्ते दो हफ्ते में एकाध बार ही साबुन लगाता हूँ। और अभी दो दिन पहिले लगाया ही था।

घर वाला—और दो दिन पहिले पूड़ियाँ भी खाई होंगी इसलिये कल आपने पूड़ियों के लिये भी मना कर दिया।

मिहमान-अगर रोटी अच्छी न बनती हो तो पूड़ियों की जरूरत मालूम होती है पर आपके यहां जैसी अच्छी रोटी बनती है और बनीभी, उसके आगे पूड़ियोंका अपथ्य कौन स्वीकार करता।

घर वाला—देखिये साहब, कभी कभी पूड़ी आदि खाने की भी इच्छा होजाती है। बिना निमित्त के हम लोग ऐसी चीजें नहीं खासकते, मिहमान के निमित्त से हम लोगों को भी ये चीजें मिलजाती हैं पर आपने तो यह रास्ता ही बन्द कर दिया।

मिहमान-इस रास्ते के बन्द होने से दूसरा रास्ता खुल-जायगा। जब मेहमान के लिये पूड़ियाँ बनाने के खर्च की विवशता न रहेगी तब सुविधानुसार जब इच्छा होगी तभी पूड़ियाँ बनने लगेंगी।

घर वाला-आप तो अतिथि सेवा करने का जरा भी पुण्य नहीं लूटने देते। यहां तक कि हमें ऋण से लाद रहे हैं। चार आने का खाया न होगा किन्तु आप चार रुपये की फल मिठाई आदि लेते आये।

मिहमान- वह तो बच्चों के लिये थी। आपके और मेरे बच्चे अलग थोड़े ही हैं।

घर वाला— जी हां! इसीलिये बच्चोंपर बड़ी दया की कि उन्हें अपने कपड़े भी न धोने दिये।

मिहमान-आप तो मुझे अभी से बूढ़ा समझते हैं पर मैं तो जवान हूं। ऐसी हालतमें आपपर या बच्चोंपर धोती धोने का बोझ डालूं तो यह जवानी को लजाने के समान होगा।

घरवाला-समझमें नहीं आता कि घरवाला मैं हूँ या आप? मिहमान आप हैं या मैं? अतिथि सत्कार का पुण्य जब अतिथि ही लूटने लगे तब हमें वह पुण्य कब मिलेगा?

मिहमान-जिस दिन आपके चरणों से मेरी झोपड़ी पवित्र होगी।

दोनों हसने लगे मानों स्वर्ग के फूल झड़ रहे हों।

४ मम्मेशी ११९५६ उदयरात्रि २॥ बजे

३२- मेहमानों का काम

नरक

पति—साढ़े दस तो बज चुके हैं और अभी तक चूल्हे पर कड़ाही का पता नहीं है। क्या मेहमान शाम तक भूखे बैठे रहेंगे?

पत्नी—तो मैं क्या करूं? सबेरे से उठकर ही तो काम में लगी हूं। इतनी फौज को चायपानी नाश्ता कराना भी तो पूरी रसोई है। उससे निवटी कि इस दूसरी रसोई में लगी। आखिर

हाथ तो दो ही हैं।

पति - तो चार किसके होते हैं?

पत्नी-मौके पर सभी घरों में चार होते हैं। काम बढ़जाने पर अकेली स्त्री पर सब काम नहीं छोड़ा जाता। दूसरे हाथ भी काम में लगते हैं।

पति-तो मैं मित्रों को बैठक में अकेला छोड़कर यहां रसोई घरमें चूल्हा फूंकने बैठ जाऊं?

पत्नी-मुँह तो गप्पें मारने के लिये है उससे चूल्हा फूंकने का बेकार काम क्यों करोगे? पर जब गप्पों में मुँह चल ही रहा है तब चबाने में चलाने की क्या जरूरत है? आज देर ही सही।

पति-जब तुम्हारी सहेलियाँ आती हैं तब उनसे कभी ऐसी बात कही?

पत्नी—तब कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती। मेरी सहेलियाँ हाथ रोककर मुँह नहीं चलातीं। वे कामभी करती जाती हैं।

पति-और कमाकर भी लाती होंगी।

पत्नी-बनाने के काम में जो कमाई है वह बाहरकी कमाई से कम नहीं होती। जरा अपने मिहमानों को होटल में भोजन कराने लेजाओ तब मालूम होगाकि बनानेकी कमाई कितनी हुई है?

पति—हां! मेहमान होटल में जायँगे और तुम पड़ी पड़ी आराम करोगी।

पत्नी- मुझे आराम देने के पाप की चिन्ता न करो। मेरा आराम तो उसी दिन खत्म होगया जिस दिन इस घर में आई। होटल में तुम सब खाने चले जाओगे तब भी सब के कपड़े धोते धोते मुझे शाम होजायगी।

पति—एक दिन जरा काम बढ़गया तो तुम्हारी सभ्यता का दिवाला निकलगया।

पत्नी—यह एक दिन की बात है ? हर दिन कोई न कोई लदा ही तो रहता है। हमें तो कभी ऐसा मौका नहीं मिलता कि चलो, आज दूसरों के यहां भोजन करने जाना है इसलिये रसोई से छुट्टी है। मेरी बात जाने दो, पर तुम भी कब कब दूसरों के यहां खाने जाते हो ? सब मेरे यहां ही मुफ्त का माल उड़ाने को और मेरा कचूमर बनाने को हैं।

पति—जरा धीरे बोल ! सुन लेंगे तो मेरी नाक कट जायगी।

पत्नी-तो तुम मेरी गर्दन काट लेना। जिन्दगी से पिंड तो छूटेगा और मिहमानों को चूल्हे तक सब जगह खाली तो होजायगी।

पति का चेहरा लाल होगया। दोनों के भीतर नरक तमतमाने लगा।

स्वर्ग

पत्नी—यह क्या करते हो ? शाक तो मैं अभी बनालेती हूँ। तुम्हें हाथ लगाने की कोई जरूरत नहीं है।

पति-तुम्हारी अद्भुत योग्यता, धीरज और सेवाभाव का मुझे पता है, पर मेहमानों की सेवा का सारा पुण्य क्या तुम्हीं लूट लोगी ? कुछ मुझे भी तो लेने दो।

पत्नी—पुण्य का हिस्सा तो बँधा बँधाया है। तुम्हारी कमाई में आधा हिस्सा मेरा, मेरी सेवा में आधा हिस्सा तुम्हारा तो सदा से तय है। अब तुम मेरे काम में हाथ बटाकर अपना हिस्सा बढ़ाने की कोशिश न करो।

पति-पर आज तो काम तिगुना है। इस तिगुने पुण्य में थोड़ा मैंने लेलिया तो तुम्हारा क्या घटनेवाला है ?

पत्नी-सो तो तुम सबने पहिले ही लेलिया। मेहमानों ने

अपने अपने कपड़े धोलिये। तुमने पानी भरकर रसोईघर में रख दिया। अपना बैठक खाना झाड़लिया। बिस्तर वगैरह उठालिये। इस तरह आधा पुण्य तो मेरा लूट ही लिया।

पति-खैर ! वह तुम्हारे खाते जमा कर दूँगा। पर रसोई जरा जल्दी होजाय इसलिये कुछ हाथ तो बटाऊं ?

पत्नी—रसोई जल्दी ही होगी। हर दिन की अपेक्षा आधे घण्टे से अधिक देर न होगी।

मेहमान—(रसोईघर में प्रवेश कर) देर की चिन्ता नहीं है भाभी ! पर आपसे मिलने का और बात करने का सौभाग्य भी तो मिलना चाहिये।

पत्नी—तो बैठिये ! मैं बात भी करती जाऊंगी और काम भी करती जाऊंगी।

मेहमान—बड़ी चतुर हो भाभी ! देवरोंको शर्मिंदा करने का कार्यक्रम तो बहुत अच्छा बनाया है। तुम अबला कहलाकर भी काम भी करोगी और बात भी ! हम पहिलवान होकर भी बातें करने के लिये हाथपर हाथ रक्खे बैठे रहेंगे !

पत्नी-यह क्यों नहीं कहते कि भोजन में आधे घण्टे की भी देर सहन नहीं होरही है ?

मेहमान—देरी का बिलकुल डर नहीं है भाभी ! बल्कि हम लोग काम करेंगे तो काम का बोझ भले ही बट जाय, पर समय तो अधिक ही लगेगा। गप्पों में आपका हाथ भी ढीला कर देंगे। इस तरह जब देर होजायगी तब कड़ी भूख में व्याज सहित सब वसूल करेंगे।

पत्नी—कर लिया वसूल। ससुराल की तरह चिगलते ही न रहजाओ तो बात।

मेहमान—पूरा मेहमान बनाकर रक्खोगी तो यही होगा।

पर कुछ काम करने दोगी तो इतने बेतकल्लुफ होजायँगे कि चिगलने की जगह निगलने लगेंगे। बोलो, चिगलाना है कि निगलाना ?

पत्नी—हारी बाबा तुम लोगोंसे। जो करना हो सो करो।

मेहमान-तो भाईसाहब शाकभाजी बनायँगे, मैं आटा गूंदूंगा, बाकी लोग दाल चावल बीनेंगे, पूड़ियाँ तलेंगे।

पत्नी तब मैं क्या बैठी बैठी तमाशा देखूं ?

मेहमान-तुम्हीं क्यों ? सभी मिलकर तमाशा करेंगे भी, और देखेंगे भी। बाकी तुम्हारे लिये पूड़ी बेलनेका सबसे बड़ा काम है ही। क्योंकि हम लोग वह काम करेंगे तो भारत इंग्लेण्ड अमेरिका के नक्शे ही बना डालेंगे।

(सब लोग काम में लगगये, मजे की बातें होने लगीं; हँसी के फव्वारे उड़ने लगे। समय भी कटा और काम भी बोझ न मालूम हुआ। श्रम और स्वर्ग का समन्वय होगया।)

११ अंका १९५६ इ. सं. ४-४-५६

३३- नौकर

नरक

मालिक— क्यों रे, अभी से काम बन्द कर दिया ? अभी तो पहर भर दिन बाकी है। और कामभी कुछ नहीं हुआ है।

नौकर— यहां तो मरजाने पर भी कुछ भी काम न होगा, तो काम के लिये क्या जान दे दूं ?

मालिक- तेरी जान का मुझे क्या करना है ? जितने पैसे लेता है उतना काम कर ! हरामका न खा, बस हो चुका।

नौकर- हम लोग हराम का नहीं खाते, खून पसीना एक करते हैं।

मालिक- तभी एक दिन का काम तीन दिन में पूरा नहीं होता। तुम लोग बातें मारना और लड़ना जितना सीख गये हो,

उससे आधा भी काम करते तो देश की सम्पदा दूनी होगई होती।

नौकर-दूनी होगई होती तो किस कामकी ? हमें तो बैल सरीखा जुतना और घास खाना ही मिलता है। उसमें तो न कोई तरक्की हुई, न होगी।

मालिक—तरक्की क्यों नहीं हुई ? पहिले से पांचगुणी तो मजदूरी देता हूं। और क्या दूं ?

नौकर- पांचगुने नोटों को चाटूं क्या ? महँगाई तो पांचगुने से ज्यादा होगई है।

मालिक—सो तो होगी ही। जब तुम लोग पांचगुना लेकर भी काम न करोगे तब हर चीज का उत्पादन महँगा हो ही जायगा। तुम लोग पांचगुने नहीं पचास गुने पैसे बढ़वा लो, वह सब दाम चीजोंपर ही चढ़ेगा और महँगाई बढ़ेगी।

नौकर—मजदूरों का खून चूसने और तेल निकालने के लिये आप लोग उन्हें उल्लू बनाना ही जानते हैं और तो कुछ नहीं जानते।

मालिक- ठीक काम करने की बात कहना खून चूसना है ? तो चले जाओ यहां से ! न मुझे तुम्हारा खून चूसना है न तेल निकालना है ?

(नौकर बड़बड़ाता हुआ, हाथ पैर फटकारता हुआ चला जाता है)

स्वर्ग

मालिक-अरे भाई; कब तक काम करोगे ? अँधेरा तो हो चला है। कितना काम कर लिया है तुमने ! कुछ शरीर पर भी तो दया किया करो !

नौकर- बस, अब बन्द ही करता हूँ। थोड़ासा काम और रहगया है। किसी तरह दिन पूरा करने से कैसे चलेगा। और शरीर पर तो यह ही दया है कि उससे पूरा काम लिया जाय। शरीर

पर कुछ काम करने दोगी तो इतने बेतकल्लुफ होजायँगे कि चिग-लने की जगह निगलने लगेंगे। बोलो, चिगलाना है कि निगलाना?

पत्नी—हारी बाबा तुम लोगोंसे। जो करना हो सो करो।

मेहमान-तो भाईसाहब शाकभाजी बनायँगे, मैं आटा गूनूंगा, बाकी लोग दाल चावल बीनेंगे. पूड़ियाँ तलेंगे।

पत्नी-तब मैं क्या बैठी बैठी तमाशा देखूं?

मेहमान-तुम्हीं क्यों? सभी मिलकर तमाशा करेंगे भी, और देखेंगे भी। बाकी तुम्हारे लिये पूड़ी बेलनेका सबसे बड़ा काम है ही। क्योंकि हम लोग वह काम करेंगे तो भारत इंग्लेण्ड अमेरिका के नक्शे ही बना डालेंगे।

(सब लोग काम में लगगये, मजे की बातें होने लगीं; हँसी के फव्वारे उड़ने लगे। समय भी कटा और काम भी बोझ न मालूम हुआ। श्रम और स्वर्ग का समन्वय होगया।)

११ अंका ११९५६ इ. सं. ४-४-५६

३३- नौकर

नरक

मालिक—क्यों रे, अभी से काम बन्द कर दिया? अभी तो पहर भर दिन बाकी है। और कामभी कुछ नहीं हुआ है।

नौकर— यहां तो मरजाने पर भी कुछ भी काम न होगा, तो काम के लिये क्या जान दे दूं?

मालिक- तेरी जान का मुझे क्या करना है? जितने पैसे लेता है उतना काम कर! हरामका न खा, बस हो चुका।

नौकर- हम लोग हराम का नहीं खाते, खून पसीना एक करते हैं।

मालिक- तभी एक दिन का काम तीन दिन में पूरा नहीं होता। तुम लोग बातें मारना और लड़ना जितना सीख गये हो,

उससे आधा भी काम करते तो देश की सम्पदा दूनी होगई होती।

नौकर-दूनी होगई होती तो किस कामकी ? हमें तो बैल सरीखा जुतना और घास खाना ही मिलता है। उसमें तो न कोई तरक्की हुई, न होगी।

मालिक—तरक्की क्यों नहीं हुई ? पहिले से पांचगुणी तो मजदूरी देता हूं। और क्या दूं ?

नौकर- पांचगुने नोटों को चाटूं क्या ? महँगाई तो पांच-गुने से ज्यादा होगई है।

मालिक—सो तो होगी ही। जब तुम लोग पांचगुना लेकर भी काम न करोगे तब हर चीज का उत्पादन महँगा हो ही जायगा। तुम लोग पांचगुने नहीं पचास गुने पैसे बढ़वा लो, वह सब दाम चीजोंपर ही चढ़ेगा और महँगाई बढ़ेगी।

नौकर—मजदूरों का खून चूसने और तेल निकालने के लिये आप लोग उन्हें उल्लू बनाना ही जानते हैं और तो कुछ नहीं जानते।

मालिक- ठीक काम करने की बात कहना खून चूसना है ? तो चले जाओ यहां से ! न मुझे तुम्हारा खून चूसना है न तेल निकालना है ?

(नौकर बड़बड़ाता हुआ, हाथ पैर फटकारता हुआ चला जाता है)

स्वर्ग

मालिक-अरे भाई; कब तक काम करोगे ? अँधेरा तो हो चला है। कितना काम कर लिया है तुमने ! कुछ शरीर पर भी तो दया किया करो !

नौकर- बस, अब बन्द ही करता हूँ। थोड़ासा काम और रहगया है। किसी तरह दिन पूरा करने से कैसे चलेगा। और शरीर पर तो यह दया है कि उससे पूरा काम लिया जाय। शरीर

का नाश काम से नहीं, आलस्य से होता है।

मालिक—अरे, पर आलस्य करने को कौन कहता है? पर श्रम को भी तो कोई मर्यादा है।

नौकर- मर्यादा के बाहर कौन काम करता है मालिक? सब ज्यादा से ज्यादा आलस्य की पूजा करते हैं। इसीलिये तो पांचगुनी मजदूरी होनेपर भी पेट नहीं भरता।

मालिक—महँगाई छह गुनी होगई हो तो पांचगुनी मजदूरी होनेपर भी कैसे पेट भरेगा?

नौकर—मजदूर जब पांचगुना लेंगे और काम आधा भी न करेंगे तब महँगाई बढ़ेगी ही। आखिर बढ़ी हुई मजदूरी चीजोंपर ही तो चढ़ेगी।

मालिक (हँसकर) तुम तो मालिकों के वकील मालूम होते हो।

नौकर-मैं किसी का वकील नहीं हूं मालिक। सच्ची बात ही कहता हूं। आज तो सभी कामचोर बन रहे हैं। और सभी ज्यादा से ज्यादा सुखसामग्री चाहते हैं। पर यह बात किसी की समझमें नहीं आती कि जब माल ही कम पैदा होगा तब सब को ज्यादा कहां से मिल जायगा? नोटों के बिन्डल बढ़ने से माल तो नहीं बढ़ता।

मालिक—नहीं बढ़ता; पर तुम्हारे ही खून पसीना एक करने से माल न बढ़ जायगा

(यह कहकर मालिक नौकर के हाथ का फावड़ा छीनकर चलने लगा। नौकर ने भी मालिक के पीछे जल्दी जल्दी आकर मालिक के हाथसे फावड़ा लेलिया और बोला-

दुनिया के सब आदमी एक साथ तो सुधरेंगे नहीं। एक एक करके ही सुधरेंगे। किसी को तो पहिले सुधरना पड़ेगा। तब मैं ही क्यों न सुधरूं?

मालिक-तुम आदमी नहीं हो देवता हो।

नौकर- यह सब आपके देवतापन की छाया है।

१४ अंका ११९५९ इतिहास संवत् ८-४-५९ ईस्वी

३४-- बीमार

नाटक

बीमार—अरे कहां गये रे सब लोग ? सब के सब कहां मरगये ?

पुत्र—सब यहीं हैं। कहीं नहीं मरगये हैं। तुम्हारे मारे मरने की फ़ुरसत किसे है ?

बीमार—तो कहां गये थे ? न यहां कोई बातचीत करने को है; न हाथ पैर दबाने को है, न पानी देने को है।

पुत्र—क्या बातचीत करें तुम्हारे साथ ? हाय दैया हाय दैया के सिवाय तुम्हारे मुँह से और निकलता क्या है जिसके आधार से बातचीत की जाय ? और हाथ पैर भी कब तक दबाये जायँ। न चलना फिरना है न काम करना है फिर थकावट कहां से आजाती है ? पास में पानी रक्खा है वह भी तो उठाकर लिया नहीं जाता।

बीमार—उठने की हिम्मत हो तब तो ?

पुत्र—उठने की हिम्मत तो नहीं है पर बड़बड़ाने की हिम्मत तो है। एक मिनिट को भी तो जीभ बन्द नहीं होती।

बीमार—होजायगी। सदा के लिये जीभ बन्द होजायगी। तुम सब के सिर का बोझ उतर जायगा हरामखोरो !

(पुत्रबधू- (बड़बड़ाती हुई) गाली के सिवाय और कोई बात तो मुँह से निकलती नहीं है। शान्ति से भगवान का नाम भी तो नहीं लिया जाता।

बीमार—भगवान का नाम लेने को मेरे मरने का समय

आगया है न ? वह तो यह कहो कि डोरी जरा पक्की है नहीं तो तुम लोग तो मौत न आनेपर भी मार डालने में कसर न रक्खो !

पुत्र—तुम्हारी हत्या करने के लिये ही हम लोग दिनरात सेवा करते हैं न ? सारे घर की नाक में दम आगया है, न कोई चैन से सो पाता है, न निश्चिन्तता से घड़ीभर काम कर पाता है। इतने पर भी हम लोग हरामखोर हैं। किसी को मौत भी तो नहीं आती कि चैन मिले।

बीमार—(क्रोधसे दांत पीसते हुए) इसी दिन के लिये तुम लोगों को पाला था हरामखोरो। चार आठ दिन की बीमारी में भी कोई काम नहीं आता। कमाई खाने को सब थे। अब सेवा को कोई नहीं।

पुत्र—और कितनी सेवा लोगे और क्या क्या सेवा लोगे ? हम लोगों की जान ही रहगई है निकलने को। सो जान लेलो। जिससे हम लोगों की उम्र तुम्हारी उम्रमें जुड़जाये। और सैकड़ों वर्षों तक घर की दीवारों पर फर्श और छप्परपर राज्य करते रहो।

बीमार-(उग्र क्रोध से अपना सिर पीटते हुए) हट जाओ हरामखोरो ! अपना यह काला मुँह हमें न दिखाओ ! मुझे किसी की सेवा की जरूरत नहीं है। बस, आजमें मरकर ही रहूँगा। हे भगवान, मौत भेज ! मौत भेज !! (हाथ पैर पटकता है और सिर पीटता है)

पुत्र—(घृणा की मुद्रा के साथ) आगई मौत ? हम सब को खाये बिना मौत क्या यों ही आजायगी ? " जाकी यहां चाह नहीं वाकी वहां चाह नहीं " (इस प्रकार बड़बड़ाता हुआ चला जाता है)

स्वर्ग

पुत्र(बीमार से) पिताजी, कैसी तबियत है ? हम सब

यहीं बैठे हैं ? कुछ हुक्म कीजिये ! कुछ सेवा करें।

बीमार—और क्या सेवा करोगे बेटा, दिनरात का सारा समय तो तुम लोग देरहे हो।

पुत्र-समय तो जरूर देरहे हैं पिताजी, पर सेवा तो कुछ नहीं कर रहे हैं। चुपचाप बैठे रहते हैं। आप कुछ हुक्म देते ही नहीं, बल्कि कुछ सेवा करने जाते हैं तो इनकार कर देते हैं।

बीमार—इनकार न करूं तो क्या करूं ? बीमारी को तो चुपचाप सहने में ही शान्ति है।

पुत्र—बीमारी का कष्ट सहने में तो हम क्या हाथ बटा सकते हैं पिताजी, फिरभी हाथ पैर दबाकर कुछ दर्द तो कम कर सकते हैं और भी छोटी मोटी जरूरत पूरी करके सेवा कर सकते हैं।

बीमार—सो तो तुम सब करते ही हो। मेरे मना करने पर भी हाथ पैर दबाते ही हो। पानी पर नजर पड़ते ही पानी पिलाने दौड़ पड़ते हो। कहने के लिये तो कोई जगहही नहीं रखते। मुझे तो इसी बात का दुःख है कि अपनी गलती के लिये सबको सजा भोगना पड़ती है।

पुत्र—इसमें आपकी गलती क्या है पिताजी !

बीमार—बीमार होना गलती नहीं है तो क्या है ? बीमारी अपने आप तो आती नहीं। अपनी किसी भूल से, अपने किसी असंयम से ही आती है।

पुत्र- बीमारी तो सभी को होती है पिताजी, इसमें आप की ही क्या भूल है ?

बीमार- ठीक है; यह मुझ अकेले की ही भूल नहीं है। सभी ऐसी भूल करते हैं। पर इससे प्रकृति दंड देना नहीं छोड़ देती। सभी लोग आग में उंगली देते हों तो आग उंगली जलाना बन्द न कर देगी। जो भूल सभी करते हैं उसका दंड सभी को

सहना पड़ता है। रो रो रोकर और हाय हाय करके भोगने की अपेक्षा शान्ति से सहना अच्छा है।

पुत्र-पर हमलोग बीमारपड़ते हैं तबआपकी नाकमें दम करदेते हैं।

बीमार-तुमलोग बच्चे हो। धीरे धीरे ही सहनशीलता आयगी।

पुत्र-पर आपको छोड़कर सभीतो इसी तरह नाकमें दम करदेते हैं।

बीमार— किसी किसी की बीमारी ही सहनशक्ति के बाहर होती है इसलिये उनकी बेचैनी और अशान्ति खूब प्रगट होती है। बहुतों को अधिक से अधिक सहानुभूति के बिना कष्ट सहा नहीं जाता इसलिये वे अपना कष्ट खूब प्रगट करते हैं जिसमें सहानुभूति अधिक मिले। पर मैं सोचता हूँ कि दूसरों को परेशान और बेचैन करने से भी अपना दुःख नहीं घटता इसलिये दूसरों को कम से कम परेशान करना चाहिये। यों तुमलोग मेरेलिये न जाने कितने कष्ट उठाते हो; एक क्षण को भी मुझे नहीं भूलते। मुझे तो इसी का बड़ा संकोच रहता है।

पुत्रवधू—हम लोगों से भी संकोच किस बात का पिता जी, हम सब तो आप के ही अंग हैं। जैसा चाहे और जितना चाहे उपयोग करें?

बीमार—उपयोग करने में क्या कसर रखता हूं बेटी! पर तू इतनी सयानी है कि बोलने का कुछ मौका भी तो नहीं देती। बोलने के पहिले ही जो चाहिये वह पूरा होजाता है। ऐसा मालूम होता है कि जैसे अपने मस्तिष्क के विचारों का हुक्म अपने आप स्नायुओं के द्वारा अपने हाथ पैरों तक चला जाता है उसीप्रकार तुम लोगों के हाथ पैरों तक भी मेरे स्नायु चलेगये हों। विचार मेरे मस्तिष्क में आते हैं और काम तुम लोगों के हाथ करने लगते हैं।

पुत्रवधू-आपहमें शरमाते हैं पिताजी। हम कुछभी नहीं करपाते।

बीमार— खूब करपाते हो। सब एक से एक बढ़कर हो। कहने को तू पुत्रवधू है। पर बेटी से बढ़कर है। बल्कि पता ही नहीं लगता कि तू बेटी है या बेटा है?

(बीमार की आंखों में प्रेम के अश्रु भर आये। वह पलंगके नीचे बैठे हुए पुत्र और पुत्रवधू के सिरपर प्रेमसे हाथ फेरने लगा)

१६ अंका ११९५९ इ. सं १०-४-५६

सत्यभक्त साहित्य

सत्यभक्त साहित्यमें सत्य और कलाका पूर्ण समन्वय हुआ है।

सत्यभक्त साहित्य किताबों को पढ़कर नहीं, दुनियाको पढकर लिखा गया है। वह तर्क तथा अनुभवोंका निचोड़ है।

सत्यभक्त साहित्यमें हरएकबात नयेतरीकेसे नयेदृष्टिकोणसेकहीगई है।

सत्यभक्तसाहित्यमें सासबहू भाईभतीजे मित्रपड़ौसी आदिकीसमस्याओं से लेकर विश्वकी बड़ीसेबड़ी समस्याएँ सुलझाई गई हैं।

सत्यभक्त साहित्य इतने सरल ढंग से लिखागया है कि साधारण पढ़ालिखा व्यक्ति भी उसे समझ सकता है।

सत्यभक्त साहित्य में -- इतनी मौलिक ज्ञान सामग्री भरी है कि बड़े से बड़े विद्वानोंके द्वारा भी वह अध्ययन करने योग्य है।

सत्यभक्त साहित्य में जो कुछ कहा गया है वह सब व्यवहारमें उतारनेलायक है।अव्यवहार्यबातोंका प्रतिपादन उसमेंनहीं है।

सत्यभक्त साहित्य में हर एक बात का विवेचन करते समय इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि उससे विरुद्ध पक्षपर उपेक्षा न होजाय। किसी बातका एकांगी विवेचन नहीं किया गया।

सत्यभक्त साहित्य की भाषा प्रसाद गुणयुक्त है।

सत्यभक्त साहित्य में उपन्यास, कहानियाँ, लघुकथाएँ चुटकिले, नाटक, एकांकी, काव्य, गीत निबन्ध, पत्र, प्रश्नोत्तर, सूक्तिसंग्रह, सारसंग्रह, आलोचनाएं, संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा वृतान्त, डायरी और बड़े बड़े संदर्भ ग्रंथ है।

सत्यभक्त साहित्य में—धर्म, दर्शन समाज शास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, भाषा शास्त्र, आदि अधिकांश महत्वपूर्ण विषयों पर नये दृष्टिकोणसे मौलिक विवेचन किया गया है।

सत्यभक्त साहित्य के कुछ ग्रंथ मराठी गुजराती कनड़ी और तेलगु भाषामेंभी छपेहैं। अंग्रजी आदिकेलियेभी योजना होरही है।

सत्यभक्त साहित्यपर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा (२००) का प्रथम पुरस्कार मिल चुका है।